यशपाल

कमला प्रसाद

H
813.3
Y 26 K

भारतीय साहित्य के निर्माता

भारतीय साहित्य के निर्माता

यशपाल

कमला प्रसाद

साहित्य अकादेमी

Yashpal : A monograph by Kamala Prasad on the eminent Hindi writer. Sahitya Akademi, New Delhi (1984),**SAHITYA AKADEMI**
REVISED PRICE Rs. 15.00

© साहित्य अकादेमी

Library IIAS, Shimla
H 813.3 Y 26 K
00094872

प्रथम संस्करण : 1984

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय

रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोज़शाह मार्ग, नई दिल्ली 110001

क्षेत्रीय कार्यालय

ब्लाक V-बी, रवीन्द्र सरोवर स्टेडियम, कलकत्ता 700029
29, एल्डाम्स रोड (द्वितीय मंज़िल), तेनामपेट, मद्रास 600018
172, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग, दादर, बम्बई 400014

H
813.2
Y26K

मूल्य
SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15.00

मुद्रक
संजय प्रिंटर्स,
दिल्ली 110032

INDIAN INSTITUTE OF ADVANCED STUDY
Acc. No. 94872
Date 13/3/2000
SIMLA

अनुक्रम

ज़िन्दगी और स्वभाव	7
आर्य-समाज के बीच	9
क्रांतिकारी दल में	11
विप्लव काल	13
मार्क्सवाद के प्रति आस्था	15
कहानीकार	19
उपन्यास लेखक के रूप में	29
यात्रा-साहित्य	41
बात पर बात	54
यथार्थवाद की कसौटी पर	58
यशपाल की रचनाएँ	67

ज़िन्दगी और स्वभाव

क्रान्तिकारी यशपाल का जीवन उतार-चढ़ाव के द्वन्द्व की रोमांचक कहानी रहा है। इनका जन्म 3 दिसम्बर 1903 को हुआ, फ़िरोज़पुर छावनी में। पिता का नाम था—हीरालाल। उनके पास छोटी-सी अपनी दुकान थी। इनकी माता प्रेम-देवी छावनी की आर्य पाठशाला में नौकरी करती थीं। वेतन इतना कम था कि घर का खर्च चलाना मुश्किल था। इसलिए पहले बालक यशपाल को काशीपुर, ज़िला नैनीताल, किसी रिश्तेदार के यहाँ भेज दिया गया। उम्मीद थी कि वहाँ पढ़ाई का सिलसिला ठीक से जम जाएगा पर ऐसा हुआ नहीं। अत: माँ ने अपने पास बुला लिया और गुरुकुल काँगड़ी के ही स्कूल में भर्ती करा दिया। इस समय आयु सात वर्ष की थी। माताजी चाहती थीं कि लड़का महर्षि दयानन्द के आदर्शों का अनुगामी बने। सन् 1917 में, उन्हें असाध्य रोग ने घेर लिया, इसलिये लाहौर भेज दिया गया। यहाँ ठीक हुए तथा यहीं डी०ए०वी० स्कूल में भर्ती करा दिया गया। पारि-वारिक कारणों से लाहौर में ज़्यादा दिन नहीं रह सके। इसलिए आगे की शिक्षा फ़िरोज़पुर छावनी में ही हुई। 1921 में मैट्रिक की परीक्षा प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान के साथ उत्तीर्ण की। इन्हीं दिनों यशपाल की दिलचस्पी राजनीति में होने लगी थी। रोलेट एक्ट के विरोध में कांग्रेस ने जो असहयोग आन्दोलन किया था, उसका प्रभाव उनके ऊपर पड़ा। यह प्रभाव इतना गहरा था कि प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने के कारण आगे की शिक्षा के लिए मिलने वाले वज़ीफ़े के साथ सरकारी कॉलेज में प्रवेश की सुविधा उन्होंने छोड़ दी। यशपाल का स्वभाव बहुत जोशीला था, इसलिए समझौते की ठण्डी बातें उनके गले से नहीं उतरती थीं। 'चौरी चौरा' प्रकरण में उन्हें इसीलिये गाँधी का रवैया अच्छा नहीं लगा। वे निराश हुए और फिर पढ़ाई की ओर मुड़ गये। लाला लाजपतराय द्वारा स्थापित नेशनल कॉलेज में दाखिला ले लिया। इसी जगह भगतसिंह, सुखदेव और भगवतीचरण वर्मा का साथ हो गया। इनके साथ ने उनके स्वभाव को शक्ति दी। यशपाल की यह शक्ति उनके साथ जीवन भर रही।

यशपाल ने बी० ए० पास कर लिया। कुछ दिन अध्यापकी की और छोड़ दी। अख़बार की भी नौकरी नहीं कर सके। दरअसल उनके भीतर एक ज्वाला थी, जो नौकरी की सीमाओं को लाँघ जाती थी। वह स्वतंत्रता अर्जित करनेवाले भारतीय थे।

यशपाल पहाड़ी थे, छावनी के आर्य समाजी वातावरण में पले, ग़रीबो की आँख से दुनिया को देखना शुरू किया। उन्होंने अपने प्रयत्नों से ज़िन्दगी को तैयार किया। रहस्यमूलक, आध्यात्मिक और अदृश्य लोक की बातें उनके मानस में कभी नहीं पैठ सकीं। वह क्रिया और कर्म से जुड़ने लगे। दृश्य में मौजूदा आन्दोलनों के माहौल ने उनमें सक्रियता की अपार संभावनाएँ पैदा कर दीं। माँ का विश्वास आर्य समाज में था। इस समाज की भूमिका तत्काल कई अर्थों में परिवर्तनकामी थी। गाँधी का प्रभाव भी जनता में बढ़ता जा रहा था। दोनों में जो परिवर्तनशील बातें थीं, वे यशपाल को रुचतीं। वह साथियों की टोली बनाकर जनता के बीच अलख जगाते। जहाँ उनके जोश को रास्ता न मिला, उन्होंने आर्यसमाज और गाँधी की कांग्रेस को छोड़ दिया। नेशनल कॉलेज में मिले उनके साथियों ने तर्क, प्रेम, ईमानदारी, वैचारिक प्रखरता, सक्रियता और संघर्ष के रास्ते खोल दिये। यही यशपाल की जगह थी—जिसके लिए उनका मन तड़पता रहा था। वह क्रान्तिकारी गतिविधियों में हिस्सा लेने लगे। बम बनाना, फोड़ना, गोली चलाना, छिपकर काम करना, पढ़ना, सीखना दिनचर्या हो गई। जेल गये तो बांग्ला, फ्रेंच, रूसी, इतालवी भाषाएँ सीखकर लौटे। बरेली जेल में ही 7 अगस्त, 1936 को जीवन संगिनी प्रकाशवती का चयन कर लिया, जो उनके लिये पूरक सिद्ध हुईं। बाद में वह क्रांतिकारियों में अकेले बचे, इसलिए गोली का रास्ता छोड़कर क़लम को अपना लिया। 25 दिसम्बर, 1976 तक इस रास्ते पर अविराम चलते रहे। यशपाल की ज़िन्दगी की यही अंतिम तारीख़ बन गयी।

आर्य-समाज के बीच

यशपाल के मानस में वैचारिक प्रभाव और उससे मुठभेड़ की शुरुआत आर्य-समाज से हुई। आर्यसमाज की दीक्षा उन्हें एक विद्यार्थी की तरह मिली। माँ यही चाहती थीं। वह बालक को इस धर्म का प्रचारक बनाना चाहती थीं। गुरुकुल कांगड़ी का जीवन, "नंगे पाँव या खड़ाऊँ पहनकर चलना, काठ के तख़्त पर सोना, सख़्त सर्दी में सूर्योदय से पहले ठंडे पानी से नहाना, भोजन के बाद अपना लोटा थाली स्वयं माँजना तथा कभी किसी दुकान या स्त्री का मुख न देख पाना इत्यादि संयम व नियम बालक यशपाल को निभाने पड़े—" (सिंहावलोकन, भाग 1, पृष्ठ 44)। आर्य पाठशाला में संयम का जीवन सिखाया जाता था और लक्ष्य दिये जाते थे—कि विदेशी दासता से मुक्ति के बिना राष्ट्र की प्रगति नहीं हो सकती। विदेशी दासता और राष्ट्र प्रेम का अर्थ यशपाल ने यहीं जाना। संध्या समय स्कूल के मैदान में "प्राय: अंग्रेज़ों के विरुद्ध बातें करते रहने के कारण मैं आँखें मूँद-मूँद कल्पना में देखा करता कि इंग्लैण्ड कुछ-कुछ गुरुकुल के वातावरण जैसा ही दिखाई देता था। कल्पना में देखता था कि अंग्रेज़ों को धोती-कुरता पहनना पड़ रहा है।" (वही, पृ० 45)

अंग्रेजों की भारतीयों के प्रति नफ़रत और अपनी क़ौमकी महानता का दर्प अपनी नज़रों से देख चुके थे, इसलिए पाठशाला की तद्विषयक बातें उन्हें अच्छी लगती थीं। वह जितना पढ़ते, उससे ज़्यादा समझ जाते थे। वे भारतीय अमीरों के ग़रीबों के साथ व्यवहार को भी ताड़ते रहते थे। आर्य पाठशाला में समानता का पाठ पढ़ाया जाता था, पर अमीरों के लड़के अच्छी तरह से रहते, गुरुओं के कृपा पात्र होते तथा उन जैसे ग़रीबों पर ताने मारते। इस तरह इस समाज के भीतर उन्हें एक ओर देश प्रेम की सीख मिली, दूसरी ओर वर्ग विषमता की पहचान। साम्राज्यवाद और सामन्तवाद, दोनों के प्रति शत्रुता के संस्कार यहीं पड़ गये। सामन्तवाद के ख़िलाफ़ संस्कार यशपाल में आर्य समाज की शिक्षा के बजाय निजी अनुभव से उगे थे। निजी अनुभवों में उन्हें आर्य समाज की सीमाओं से मुक्त कर दिया। वह आर्य समाज के गुण और दोष जान गये। उन्हें याद आया कि "कांगड़े से पंजाब में आ बसने वाले हमारे कुछ सम्बन्धी यदि आर्य समाज के प्रभाव में न आये होते और उनकी कृपा से मेरी माँ को अक्षर ज्ञान नसीब न हो गया होता तो मैं संभव है, कांगड़े के दूसरे ग़रीब खत्री नौजवानों की तरह पीठ पर गठरी में दुकानें बाँधें कुछ कारोबार करता या लाहौर अमृतसर में बर्तन माँजने की ही नौकरी करता" (वही पृ०64)

यशपाल आर्य समाज की देन तो कभी नहीं भूल सके, पर वहाँ के आध्यात्मिक दृष्टिकोण और तथाकथित संयम की ज़िन्दगी से भीतर-ही-भीतर पलनेवाली कुंठाओं को भी पहचान गए थे। उनमें अन्तर्विरोधों को देखने की शक्ति आ गई थी, इसीलिए प्राकृतिक इच्छाओं के उनके दमन के प्रयत्नों के खिलाफ़ प्रतिक्रिया हुई। यशपाल ने पचासों कहानियों में अपनी इस प्रतिक्रिया को खुलकर व्यक्त किया है। उदाहरण के लिये एक कहानी है—'प्रायश्चित्त'। इसमें पिता अपनी बेटी को आरंभ से ही आर्य समाज की शिक्षा से बाँध देता है। उसने संध्या, तपस्या और यम-नियमों का खूब अभ्यास किया, पर अवसर आते चौदह वर्ष की आयु में ही वह वासना का शिकार हो गई। खुद कहती है, "गुरुकुल के आश्रम में रहते हुए ही मेरे मन में विलासिता की भावना उमड़ चुकी थी, परन्तु अधिष्ठात्रियों के मुख से सदुपदेश सुनकर मैं उसका दमन करती रही।" (पिंजरे की उड़ान, पृष्ठ 102)। 'ज्ञानदान', 'धर्मरक्षा', 'उत्तमी की माँ', 'पाप की कीचड़' और 'हिंसा' जैसी अन्य कहानियों में भी ये बातें मिलती हैं।

क्रान्तिकारी दल में

आर्य समाजी पाठशाला में देश प्रेम का अर्थ समझ में आने लगा था। गाँधीजी के असहयोग आन्दोलन में कुछ दिन काम करके एक बड़े साम्राज्य के विरुद्ध क्रियात्मक व्यवहार शुरू कर दिया था, पर ये दोनों केन्द्र उनके स्वभाव को विकसित करने के लिए काफ़ी नहीं थे। उनका व्यक्तित्व अद्‌भुत ऊर्जा से लबालव था। वे कुछ कर गुज़रना चाहते थे। गाँधीजी ने जब चौरीचौरा काण्ड के बाद आन्दोलन स्थगित किया, तो यशपाल को बहुत धक्का लगा। गाँधी को आशंका थी कि हाल में सम्पन्न रूसी क्रान्ति का प्रभाव इतना न बढ़ जाये कि यहाँ का आन्दोलन उनके नेतृत्व में न रहे। वे असहयोग आन्दोलन से उमड़े जोश और मज़दूरों में जागी राष्ट्रीय-भावना को साधने में सक्षम नहीं थे, इसलिए उसे ठण्डा करने की नीति अपना ली। अपने मन्तव्य को वे बहुत दिन नहीं छिपा सके। 24 नवम्बर 1921 के 'यंग इंडिया' में उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा, "स्वराज्य का यह रास्ता नहीं है। हिन्दुस्तान को बोलशेविज़्म की ज़रूरत नहीं। यहाँ के लोग इतने शांतिप्रिय हैं कि वे अराजकता को सहन नहीं कर सकते।" ये बातें तमाम युवकों को अच्छी नहीं लगीं, इसलिये उन्होंने गाँधी का साथ छोड़ दिया। पहले से ही कुछ लोगों ने "हिन्दुस्तान प्रजातंत्र दल" (एच० आर० ए०) के नाम से गुप्त रूप में क्रान्तिकारी गतिविधियाँ शुरू कर दी थीं। मोह भंग के बाद सरदार भगतसिंह, सुखदेव और भगवती चरण वर्मा इत्यादि के नेतृत्व में "नव जवान भारतीय सभा" का गठन हो गया। इस संगठन का उद्देश्य भी क्रान्तिकारी भावना के लिये सक्रिय होना था। धीरे-धीरे सैकड़ों तरुण रोज़ इस संगठन से जुड़ने लगे। भगतसिंह और सुखदेव ने अपनी पढ़ाई छोड़ दी। सरकार इनके पीछे पड़ गयी, तो ये लोग फ़रार हो गये। यशपाल इन लोगों से अब तक जुड़ चुके थे, इसलिये अध्यापक होने के बावजूद इनका काम सम्हालने लगे। क्रांति के रास्ते में चलना और नौकरी करना—यह असंभव था। अतः बाहर आ गये। घटनायें तेजी से घटती रहीं। यशपाल इनके बीच क्रांतिकारी प्रक्रिया में ढलते रहे।

सन् 1928 की दिसम्बर में साइमन कमीशन आया। लाजपतराय ने इसके बॉयकाट का नारा दिया। लाखों लोगों ने उनका साथ दिया। पुलिस ने लाजपतराय पर प्रहार किया। वे शहीद हो गये। क्रान्तिकारी युवक इसे भला कैसे सह पाते? उन्होंने तत्काल इन पुलिस गतिविधियों के लिए ज़िम्मेदार सुपरिनटेण्डेण्ट

सैण्डर्स की हत्या कर दी। सन् 1929 में भगतसिंह ने असेम्बली में बम फेंका, जिससे शासन में भय व्याप्त हो गया। यशपाल इन दिनों लाहौर में एक गुप्त केन्द्र में बम बनाया करते थे। ख़ुफ़िया एजेन्सी को इसका पता चल गया। केन्द्र तो उनके कब्ज़े में चला गया, पर यशपाल फ़रार हो गये। वे रोहतक पहुँचे और किसना नाम से वैद्य लेखराज के यहाँ नौकरी कर ली। वैद्यजी की दुकान से बचे समय में बम बनाने का काम उन्होंने जारी रखा। तेज़ाब के धुएँ से उनके कपड़े जीर्ण-शीर्ण होकर फट गये। चमड़ी जल गई पर लगन नहीं छूटी। सन् 1929 की दिसम्बर में ही इनके दल ने लार्ड इरविन की गाड़ी को बम से उड़ा देने की योजना बनायी, जिसे यशपाल ने पूरा किया। इस समय तक वह समाजवादी सिद्धान्तों को समझने लगे थे। इसका प्रमाण इससे मिलता है कि एक प्रतिगामी महापुरुष ने उनसे कहा कि वह यदि मोहम्मद जिन्ना की हत्या कर दें, तो वह उन्हें काफ़ी आर्थिक सहायता देगा। दल को आर्थिक सहायता की ज़रूरत थी, पर इस तरह से अपने उसूलों के ख़िलाफ़ धन लेने से उन्होंने इनकार कर दिया। इससे ज़ाहिर है कि यशपाल में मानवीय एकता के वैज्ञानिक सिद्धान्त गहरे धँस चुके थे।

यशपाल का दल हर क्षण मौत से खेलता था। कभी भी किसी नेता की मृत्यु हो सकती थी। यह वे सब जानते थे। 27 फरवरी, 1931 को उनके प्रमुख नेता चन्द्रशेखर आज़ाद भी शहीद हो गये। अब नेतृत्व का भार यशपाल पर आ पड़ा। दल की गतिविधियों और नेताओं के ख़िलाफ़ लाहौर तथा दिल्ली में मुकदमे चले तो यशपाल प्रधान मुलज़िम बनाये गये। यशपाल जल्दी पकड़ में आने वाले तो थे नहीं, अतः सरकार ने अख़बारों में इश्तहारों के जरिये इन्हें पकड़वाने वाले को पुरस्कार दिये जाने की घोषणा की। 23 जनवरी, 1932 को पुलिस ने इन्हें इलाहाबाद में खोज लिया। दोनों ओर से गोलियाँ चलीं। अन्ततः यशपाल पकड़ लिये गये। उन्हें 14 वर्ष का कारावास घोषित हुआ। सन् 1937 में कांग्रेस ने मंत्रिमण्डल बनाया, पर इन्हें अंग्रेज़ सरकार ने ख़तरनाक आदमी समझ अन्य छोड़े गये क़ैदियों के साथ नहीं छोड़ा। जनता और कांग्रेसी मंत्रिमण्डल का दबाव बढ़ा, तो गवर्नर ने 2 मार्च, 1936 को रिहाई का आदेश दिया। शर्त यह रखी गई कि वह पंजाब नहीं जा सकेंगे। इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता था। जहाँ रहें, वहीं काम। लखनऊ में यशपाल ने रहना तय किया और 'कर्मयोगी' में नौकरी कर ली। यह नौकरी केवल दो माह चली। वह नौकरी के लिए बने ही नहीं थे। यह उन्होंने ख़ुद ही जान लिया।

विप्लव काल

यशपाल ने सोचा कि बम और गोली की लड़ाई अब संभव नहीं है। इसके लिए न तो संगठन बचा था और न उस तरह की आर्थिक क्षमताएँ जुटाना संभव था। इसलिये उन्होंने अख़बार निकालने और क्रांतिकारी चेतना के विकास के लिये साहित्य-सृजन का संकल्प लिया। उन्होंने 300 रुपये का प्रबन्ध किया और "विप्लव" नाम से अख़बार निकालने का निर्णय लिया। लिखा है कि "राजनीति से सम्पर्क छोड़ देने का मतलब अपने देश और समाज की अवस्था और भविष्य से कोई सम्पर्क न रखना है। ऐसा वैरागी मैं नहीं हूँ। जेल के छूटने के बाद से मेरे विद्यार्थी जीवन की, जेल में दुबारा पोसी भावना फिर जाग उठी थी। निश्चय कर लिया था, मुझे जो कुछ भी करना है, साहित्य के साधन से ही करूँगा।" (सिंहावलोकन भाग 3, पृष्ठ 180) "विप्लव" इसी भावना से निकला। नवम्बर, 1938 में पहला अंक निकला। सम्पादकीय में लिखा—"हे विप्लव की अग्नि ! हे दलित और पीड़ित जनता के शक्ति उद्‌गार, उठ ! भारत के निशक्त और ठण्डे पड़ गये ख़ून को गरम कर दे। भारत तेरी ओर आँखें लगाये प्रतीक्षा कर रहा है। उसे उत्पीड़न के रक्त के कीचड़ से निकाल कर समता और शान्ति की समतल भूमि पर खड़ा कर, उसके सामने मनुष्यत्व के विकास का मार्ग खोल दे।" इस अंक के 72 पृष्ठों में 28 पृष्ठ खुद यशपाल ने लिखे। स्तम्भ थे—चक्कर क्लब, चाय की चुस्कियाँ, लखनऊ की हड़तालें, पत्रों के उत्तर, एक कहानी, एक संस्मरण, सम्पादकीय। "सिंहावलोकन" और "मार्क्सवाद की पाठशाला" शीर्षक स्तम्भ "विप्लव" के मुख्य आकर्षण थे।

वह छद्म नाम और शीर्षक बदलते भी रहते। एक विद्यार्थी, एक शिक्षार्थी, एक जानकार, एक मज़दूर, किसान-कार्यकर्त्ता, रेलवे मज़दूर, जयमहमूद हिन्दी, चन्द्र, नचिकेता शंकर और विचक्षण जैसे छद्म नाम होते थे। यशपाल "विप्लव" की तैयारी, प्रकाशन और वितरण के काम में उसी तरह जुट गये, जिस तरह कभी बम बनाने में लगे थे। पत्र का खूब स्वागत हुआ। हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक जुड़ने लगे। प्रकाशवतीजी ने तीन महीने के दौरे से पाँच सौ ग्राहक बना लिये। नौ महीने बाद उसके दैनिक करने की घोषणा की ; पर वह अधूरी रह गई। अलबत्ता उसका उर्दू संस्करण "बाग़ी" निकला। अप्रैल 1940 में, सरकार इन अख़बारों की सामग्री पर ऐतराज़ करने लगी और बारह हज़ार रुपये प्रति के हिसाब से जमानत माँग

ली। अख़बार वन्द करने पड़े। "साथी" नाम से अलग पत्र निकालना चाहा, पर अनुमति नहीं मिली। अत: "वैप्लवी ट्रैक्ट" निकला। स्थायी स्तम्भ वदल दिये गये। यशपाल गिरफ़्तार कर लिये गये। ज़मानत के वाद रिहाई हुई। अगस्त 1940 में, इसका शोषित अंक निकला। अगले अंक से सम्पादन में प्रकाशवती का नाम आया। वीमारी के कारण यशपाल कुछ दिन के लिये पहाड़ चले गये। थोड़े दिन में यह अख़वार भी वन्द कर देना पड़ा। मार्च 1947 में "विप्लव" पुन: सामने आया। इस समय तक वामपंथी कवियों, लेखकों की लम्वी क़तार खड़ी हो चुकी थी, जो इसमें सहयोग कर रही थी। किसान-मज़दूरों के संघर्ष और अधिकारों के लिये यह उनका अपना मंच वन गया। अंतिम अंक निकला मार्च-अप्रैल 1949 में।

यशपाल 15 अगस्त, 1947 की आज़ादी को 'माउण्टवेटन मार्का आज़ादी' कहते थे। अख़वार में जन विरोधी नीतियों पर खुलकर चोट करते। 'सत्य, अहिंसा और राष्ट्रीयता" पर सैद्धान्तिक सवाल उठाते। कांग्रेसी सरकार को पूंजी-वादी कहते। सरकार इसे नहीं सह पायी। उसने हमला किया। अंतिम अंक के निवेदन में इसका खुलासा यों हैं—"9 मार्च 1949 से शुरू होने वाली रेल मज़दूरों की हड़ताल का वहाना था कांग्रेसी सरकार ने सभी जनवादी शक्तियों पर फासिस्टी हमला शुरू कर दिया। सारे देश में मज़दूर-किसान कार्यकर्त्ता गिरफ़्तार कर लिये गये। विद्यार्थी नेताओं को नज़रवन्द कर दिया गया। इसमें छात्राएँ भी शामिल हैं। महिला आन्दोलन की कार्यकर्त्रियों को भी नहीं छोड़ा गया। सांस्कृतिक संस्थाओं, जननाट्य संघ आदि के सदस्य भी जेलों में ठूँस दिये गये। यहाँ तक कि प्रगतिशील पत्रों 'विप्लव', 'जनमत' के सम्पादक आदि भी अछूते न रहे।.....

.....सरकार को हम उसके दमन का सही जवाव दे सकते हैं कि "विप्लव निकलता रहे।" कोशिश थी कि पत्र निकले, पर मज़वूरी में वन्द करना पड़ा।

यशपाल की पत्रकार के रूप में भूमिका वहुत महत्त्वपूर्ण रही है। वह लगातार अन्त:प्रवाह और घटनाओं के सम्पर्क में रहे तथा मार्क्सवादी ढंग से उनका विश्लेषण करते रहे। गाँधीवाद पर भी उन्होंने इसी समय वैज्ञानिक ढंग से लिखा, जिसे "गाँधीवाद की शव-परीक्षा" कहा। 'विप्लव' निकालते तथा गाँधीवाद से सैद्धान्तिक रूप से टकराते ही इस पुस्तक का आकार उनके दिमाग़ में वना। "मार्क्सवादी पाठशाला"स्तम्भ चलाकर उन्होंने "मार्क्सवाद" पर सैद्धान्तिक पुस्तक तैयार कर ली। ऐतिहासिक भौतिकवाद की प्रक्रिया से वह उतना नहीं गुज़रे, इसीलिये परिस्थितियों की ऐतिहासिकता और उनके अन्तर्विरोधों की पहचान में यदा-कदा चूक गये। उन्होंने "विप्लव" को वाम सोच का खुला मंच कहा, कम्युनिस्ट पार्टी का पत्र नहीं। थोड़े समय के लिये यशपाल "रक्ताभ" के प्रधान सम्पादक बने और फिर कम्युनिस्ट पार्टी के साहित्यिक मासिक 'नया पथ' के। "नया पथ" में शिव वर्मा और राजीव सक्सेना इनके सहयोगी थे। इन पत्रों में भी यशपाल की प्रखरता के संकेत मिलते हैं।

मार्क्सवाद के प्रति आस्था

क्रान्तिकारी दल का सदस्य होते ही यशपाल का सम्पर्क मार्क्सवाद से होने लगा। हज़ार बंदिशों के बावजूद सोवियत रूस से प्रकाशित साहित्य इन्हें मिल जाता तथा मज़दूरों के हित में वहाँ की योजनाओं की जानकारी भी। तरुणों का झुकाव मार्क्सवाद के प्रति तेज़ी से होने लगा था। भगतसिंह, शिव वर्मा और यशपाल ने तो विधिवत् इसका अध्ययन शुरू कर दिया। मार्क्सवाद पर लिखी छोटी-छोटी पुस्तिकाओं के रूप में ही शिव वर्मा लोगों के बीच जाने जाते हैं। यशपाल और भगत सिंह की मार्क्सवादी आस्था काफ़ी उजागर है। भगत सिंह ने कचहरी में जो बयान दिये, वे तो जैसे दस्तावेज़ हैं। यशपाल ने 'विप्लव' में मार्क्सवाद की पाठ-शाला तभी शुरू की, जब इसे उन्होंने अनिवार्य दर्शन स्वीकार कर लिया था। इस पाठशाला में प्रकाशित लेखों के आधार पर उन्होंने एक पुस्तक ही तैयार कर ली—'मार्क्सवाद'। इसका पहला संस्करण 1940 ई० में छपा। भूमिका में लिखा, "यह केवल परिचय मात्र है, जिसका उद्देश्य है, गहरे विचार और अध्ययन की प्रवृत्ति पैदा करना। समाजवाद को समझने के लिये, उसे जन्म देनेवाले ऐतिहासिक कारणों को जानना ज़रूरी है, और दूसरे वादों से उसमें तुलनात्मक विवेचना भी। इस पुस्तक में यथासम्भव इसी दृष्टिकोण से काम लिया गया है।" इन दिनों हिन्दुस्तान में मार्क्सवाद का ज्ञान अल्प ही था, अतः बहुत कोशिश के बावजूद यशपाल की समझ में भी सीमाओं का होना स्वाभाविक था, जो इस पुस्तक में दिखता है।

यशपाल जिस समय यह पुस्तक लिख रहे थे, उस समय दृश्य में—डगलसवाद, नाज़ीवाद, फासीवाद, प्रजातांत्रिक समाजवाद, समष्टिवाद, गाँधीवाद, प्रजातंत्रवाद, अराजकतावाद इत्यादि वाद अपना-अपना ज़ोर आज़मा रहे थे। यशपाल ने इन सबका विश्लेषण किया और कमज़ोरियों की ओर इशारा भी। विश्लेषण से यह नतीजा अपने आप निकल आया कि मार्क्सवाद या वैज्ञानिक समाजवाद ही मानव-मुक्ति की सही दिशा है। यशपाल ने अध्यात्म के ऐतिहासिक चरित्र पर भी लिखा और सिद्ध किया कि मार्क्सवाद वर्गहीन समाज के लिये वचनबद्ध है। जबकि अध्यात्मवाद वर्ग समाज की स्थापना में सहायक रहा है। अपनी "मार्क्सवाद" पुस्तक में वे लिखते हैं, "इतिहास इस बात का गवाह है कि आध्यात्मिकता ने सदा से उपदेश दिया है कि भगवान की इच्छा और न्याय से समाज में 'मालिक-नौकर'

और 'राजा-प्रजा' का विधान बना है। नौकर और प्रजा को चाहिये कि मालिक और राजा को अपना पिता, स्वामी और रक्षक मानकर उनकी सेवा और आज्ञा का पालन करे। राजा और मालिक के प्रति विद्रोह करना सदा पाप और ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध बनाया गया है।" (पृष्ठ 45)मार्क्सवाद द्वारा प्रतिपादित मानवतावाद के रास्ते में उस समय सबसे बड़ी चुनौती गाँधी के रामराज्य की थी। लोगों को यह समझाया जाता था कि रामराज्य की कल्पना में वे सभी बातें निहित है, जो मार्क्सवाद में हैं। भारतीय कल्पना होने के कारण इसकी स्थिति हमारे देश के लिये बेहतर है। यशपाल ने लोगों को समझाया कि यह एक भ्रम है। समझाने के लिये ही उन्होंने गाँधी और राम राज्य पर पुस्तकें लिखीं। दोनों पुस्तकों में भावनावादी—ईश्वरवादी आरोपों के उत्तर भी हैं। आरोप, जो उन दिनों प्रचलित थे, ये थे—भौतिकवाद यांत्रिक दर्शन है, जिसकी लाठी उसकी भैंस का सिद्धान्त है, हिंसात्मक क्रान्ति का पक्षधर है, इसमें मानव मात्र के लिये प्रेम की भावना नहीं है, सभी समस्याओं के केन्द्र में आर्थिक समस्या है और इन आग्रहों के कारण मार्क्सवाद शाश्वत मूलों के प्रति अवहेलना का भाव रखता है। यशपाल 'विप्लव' के स्तम्भों—चक्कर क्लब, न्याय का संघर्ष, जग का मुजरा में इन प्रश्नों के उत्तर आत्मीयता के साथ देते। ये उत्तर सामान्य जनता की समझ में आने वाले होते। वे साम्प्रदायिकता, पूँजीवाद, सामन्तवाद, गाँधीवाद और प्रतिक्रियावाद के अर्थ बतलाते। लक्ष्य होता, मार्क्सवाद के विरोध में फँसी नासमझ जनता को सारी बातें ठीक से समझाना। दूसरे पत्रों में छपे विरोधी लेखों पर अपने पत्र में बहस चलाते। उदाहरणार्थ—'राष्ट्र धर्म' में मुंशीराम शर्मा का लेख छपा—'आर्य संस्कृति की रक्षा' तो यशपाल ने नचिकेता के नाम से "हमारी संस्कृति और उसकी रक्षा"—'विप्लव' में लिखा। 'बौद्ध सभ्यता और दासता' विषय पर भदन्त आनन्द कौसल्यायन और गुरुदत्त के बीच बहस होती रही। गाँधी के प्रति यशपाल का रवैया तार्किक था। गाँधी की मृत्यु के अवसर पर उन्होंने लिखा, "देश के सबसे अधिक विश्वस्त और प्रिय नेता की हत्या से सम्पूर्ण देश खिन्न और दुःखी है। महात्मा गाँधी ने साम्प्रदायिक उन्माद की धमकी से न डरकर राष्ट्र में न्याय की स्थापना के लिये अपना बलिदान देना स्वीकार किया।" चक्कर क्लब में यशपाल कई तरह के पात्र गढ़ते, अलग-अलग विचारों के और वह अपने पक्ष को तर्क देते। उनमें एक मार्क्सवादी होता, जो विश्लेषणात्मक बातचीत के जरिये निष्कर्षों को अपनी ओर मोड़ लेता। इन सभी पात्रों की भूमिका यशपाल नामक लेखक ही निभाता। वह सारे वादों को अपने घेरे में लाकर उनकी औकात खोल देता।

यशपाल के मार्क्सवाद ने नारियों की मुक्ति के लिये भी काम किया। उनका मानना था कि इस देश में नारी बेचारी है। अंग्रेज़ों की ग़ुलाम, सामन्ती जीवन-पद्धति के अनुसार धर्म और रूढ़ियों की ग़ुलाम तथा पति की भी ग़ुलाम। उसे देवी

कहा जाता, उसके सौन्दर्य के गीत गाये जाते पर वह होती केवल भोग की वस्तु। यशपाल ने लिखा, "भोग के लिये अधिक उपयोगी बनाने के लिये स्त्री को कठोर परिश्रम से दूर रख कोमल बनाया गया। जैसे मिठाई को अधिक रोचक बनाने के लिये उस पर चाँदी का वर्क़ लगाकर उसमें सुगंध डाली जाती है, उसी तरह स्त्री के केशों में सुगन्धित तेल, उसके हाथो में मेंहदी, गालों और होठों पर सुर्खी लगाई गई। उसके अंगों को सोने-चाँदी और चमकीले पत्थरों के आभूषण बनाकर मढ़ दिया गया, ताकि वह अधिक रोचक और आकर्षक बन सके। (चक्कर क्लब, पृष्ठ 78) यशपाल ने बताया कि ये बातें स्त्रियों में आदतों के रूप में ढल गयी हैं। अब वे इन्हें अपनी स्वतंत्रता मानती हैं। लुभावनी बनना उनके स्वभाव का अंग है। यशपाल ने कहानी और उपन्यास लिखकर इतने कोणों से स्त्रियों के इस भ्रम के ख़िलाफ़ जंग छेड़ी कि शायद इस क्षेत्र में हिन्दी का कोई लेखक उनकी बराबरी का नहीं है। स्त्रियों को इतना साफ़ आईना कि वे अपनी—वेश्या, कुलटा, सती जैसे रूपों के पीछे छिपी भावनाएँ देख लें। 'चक्कर क्लब' में उन्होंने कहा, "स्त्री को आधार बनाकर जो साहित्य चलता है, वह प्रधानतः पुरुष के संतोष के लिये ही है। पुरुष के सम्बन्ध से स्त्री को जो सुख मिलता है, उसका बखान स्त्री के मुख से कराकर स्त्री के मुख से अपने विरह के गीत सुनाकर उसका आत्माभिमान पूरा होता है।" (पृष्ठ 76)

चौथे दशक में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों पर खूब बहस चली थी। हिन्दी के कुछ लेखक मानने लगे थे कि सृष्टि के केन्द्र में मनुष्य की 'कामैषणाएँ' हैं। वे फ्रायड के प्रभाव में थे। यशपाल ने स्त्री-पुरुष के यौन सम्बन्धों पर काफ़ी लिखा, इसलिये लोगों ने माना कि उन पर भी फ्रायड का प्रभाव है। यशपाल की इस बारे में राय थी कि स्त्री पुरुष के साथ रहने के लिये विवाह ज़रूरी नहीं है। वे इसके बिना भी साथ रहकर सेक्स की पूर्ति कर सकते हैं। प्रेम एक तरह से सेक्स की ही अभिव्यक्ति है। इस तरह की व्याख्या में फ्रायड का आंशिक प्रभाव दिख जाता है, अतः उनकी आलोचना भी हुई। रामविलास शर्मा यशपाल के इस सेक्स प्रेम को 'साड़ी चोली उतारोवाद' कहा करते।

यशपाल यौन सम्बन्धों में पूरी तरह डूबे नहीं। वे यही बताने का प्रयत्न करते रहे कि आदर्शवादी लोग प्रत्यक्षतः जितना इसका दमन करते हैं, उतना ही वे छद्म पूर्ति की तरकीबों में उलझते जाते हैं। दरअसल यशपाल ने लोगों का उनका भीतरी चरित्र खोला है। उनका प्रयत्न यह था कि जीवन के तमाम प्रश्नों पर मार्क्सवादी ढंग से सोचा और लिखा जाये। यशपाल ने अपनी कहानियों—उपन्यासों में सोचने और लिखने की इच्छा को जारी रखा। 'दादा कामरेड', "देशद्रोही', 'पार्टी कामरेड', 'झूठा सच' और 'मेरी तेरी उसकी बात' में यह बहस देखी जा सकती है। यशपाल तर्क प्रेमी आदमी थे, इसलिये जैसे ही उन्हें लगता कि उनकी

बात कच्ची है, वे अपनी धारणाओं में संशोधन कर लेते थे। इसीलिये विकास की प्रक्रिया उनमें अन्त तक जारी रही। रचनाओं में वे सिद्धान्तों की परीक्षा लेते तथा सिद्धान्तों से रचनाओं के खरेपन को जाँचते। इस तरह मार्क्सवादी लेखक और विचारक की द्वन्द्वात्मकता उनमें निरन्तर मौजूद रही है। वे जिस जंग में शामिल हुए, उससे कभी नहीं भागे। जीना, काम करना और लिखना—अपने उद्देश्य से कभी न भटकना। वह सच्चे अर्थों में समर्पित योद्धा थे।

कहानीकार

यशपाल ने नेशनल कॉलेज में हिन्दी के तेजस्वी लेखक उदयशंकर भट्ट की प्रेरणा से 1924 ई० एक कहानी लिखी थी, जो बरेली की पत्रिका 'भ्रमर' में छपी। यह उनकी पहली प्रकाशित कहानी है। कहानीकार के रूप में उनका विधिवत् लेखन शुरू हुआ, 'विप्लव' काल में। यह लेखन अंत तक जारी रहा। उनके जाने-पहचाने प्रकाशित कहानी संकलन हैं—पिंजरे की उड़ान (1939), वो दुनिया (1941), ज्ञानदान (1943), अभिशप्त (1944), तर्क का तूफ़ान (1943), भस्मावृत्त चिनगारी (1946), फूलो का कुर्ता (1949), धर्मयुद्ध (1950), उत्तराधिकारी (1951), चित्र का शीर्षक (1951), तुमने क्यों कहा था, मैं सुन्दर हूँ (1954), उत्तमी की माँ (1955), ओ भैरवी (1958), सच बोलने की भूल (1962), खच्चर और आदमी (1964), भूख के तीन दिन (1968), लैम्पशेड (1979)। यशपाल ने अपने जीवन में जो देखा, उस पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की। आर्यसमाज में रहते हुए अंग्रेज़ों का विरोध उन्हें भाया लेकिन मनुष्य स्वभाव विरोधी संयम उन्हें कभी पसन्द नहीं आया। वह देखते थे कि स्त्री और पुरुषों को आचरण की ऐसी शिक्षा दी जाती थी, जिसे उनका मन कभी स्वीकार नहीं करता। इन आदर्शवादी स्वीकारों का खोखलापन इन्होंने यहाँ रहकर खूब देख लिया था। उनकी ज़्यादातर कहानियों में भीतर जमी स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की प्रतिक्रियाओं की अभिव्यक्ति है। ये प्रतिक्रियाएँ अनुपात से ज़्यादा हैं, इसलिये आलोचकों को यशपाल में फ्रायड का प्रभाव दिखता है। प्रभाव वैसे रहा भी हो तो यशपाल उससे जल्दी ही मुक्त हुए। वासना का योजनाबद्ध दमन जिसने भी इतनी मात्रा में देखा-भोगा होगा, उसे फ्रायड कुछ दिन प्रभावित कर सकता है परन्तु कहानियों का विश्लेषण करके नतीज़े को ज़्यादा प्रामाणिक बनाया जा सकता है।

यौन-प्रसंगों में यशपाल की कहानियों का आधार कई तरह से मसले की छान-बीन करता है। इसका लेखक पारखी है। उसकी जानकारी के सृजन से समाज के अनेक गुह्य रहस्य खुलते हैं। सारी कहानियाँ अपनी तरह से स्वतंत्र हैं, लेकिन एक-दूसरे से गुँथी हुई भी। जैसे कुछ कहानियाँ हैं—'प्रायश्चित्त', 'समाज सेवा', 'निर्वासिता', 'तर्क का तूफ़ान', 'ज्ञानदान', 'पतिव्रता', 'उत्तमी की माँ', 'प्रतिष्ठा का बोझ', 'आतिथ्य', 'दासधर्म', 'समाधि की धूल', 'रिजक', 'दूसरी नाक', 'जह हसद नहीं', 'ओ भैरवी', 'शिकायत', 'आवरू', 'छलिया नारी', 'तुमने क्यों कहा

था, मैं सुन्दर हूँ', 'ज़िम्मेवारी' इत्यादि।

'प्रायश्चित्त' कहानी में आर्यसमाज के कठोर बंधनों में पली एक लड़की है, जो अपनी सहज इच्छाओं को दबाती रही। बाद में उसे मौका मिला, तो उसकी इच्छाएं ऊपर आ गईं। वह विलासी हो गई। आत्महत्या की नौबत आ गई। उसने पिता को पत्र लिखा, 'गुरुकुल के ब्रह्मचर्य आश्रम में रहते हुए ही मेरे मन में विलासिता की भावना उमड़ चुकी थी परन्तु अधिष्ठात्रियों के मुख से सदुपदेश सुनकर मैं उसका दमन करती रही।.....मैं अमृतसर जाते ही चकाचौंध हो गई। कुछ सोचने या विचारने की शक्ति मुझ में न रही। शृंगार से लदी हुई और सुगंध उड़ाती हुई उन सब स्त्रियों को देख मैं यह याद न रख सकी कि मेरे जीवन का पवित्र आदर्श क्या था?" (पिंजरे की उड़ान, पृष्ठ 102)। समाज सेवा' में कु० उषा मेहता हैं। इन्होंने विवाह न करने और आजीवन समाज सेवा में संलग्न रहने का वादा किया। अचानक संयम की खोल को फोड़कर उद्दाम वासना का आवेग फूट पड़ा और प्रमोदनाथ के साथ उनके यौन-सम्बन्ध स्थापित हो गये। अन्ततः प्रेम विवाह हो गया। कहानी का अंत है, "उत्तर की तलाश में ही थीं, नाथ ने हाथ की सिगरेट का आख़िरी कश खेंचकर कहा—"समाज सेवा का नहीं, समाज बढ़ाने का।" (वही पृष्ठ 45)। 'निर्वासिता' कहानी में एक कुरूप लड़की इन्दु है, जो कुशाग्र बुद्धि और अध्ययनशील है। वह योग्यता के कारण कॉलेज में नौकरी पा लेती है, किन्तु एक योग्य पुरुष का जीवन सहयोग निरन्तर चाहती रहती है। कुरूपता के कारण कोई पुरुष उसके समीप नहीं आया। कहती है, 'चार-चार आने, आठ-आठ आने में जो पुरुष बिकता हो, उसका ऐसा अहंकार और स्पर्धा।' (तर्क का तूफ़ान, पृष्ठ17)

अभिजात-वर्ग की नैतिकता के प्रति इन्दु का संघर्ष इस कहानी में नतीजे तक ले जाता है। वह मसूरी के होटल से निकाल दी जाती है, पर तर्क उसे घुटन से मुक्ति दे देता है। यशपाल मानते हैं, जवान स्त्री-पुरुषों की मानसिकता और उनके भावुक आवेश कुचल दिये जाते हैं, परन्तु तर्क उन्हें संतोष देता है। एक और कहानी है—'तर्क का तूफ़ान'। इस कहानी में प्रेम और युवावस्था की यौन तरंगों के भीतर जाकर इनके रेशे-रेशे को खोला गया है—तर्क से। उन्होंने आदर्शवादी भाषा की धज्जियाँ उड़ायी हैं। 'तर्क का तूफ़ान' संकलन की भूमिका में वह लिखते हैं कि 'पुरुषों के शव को सभा समाज में लिये नहीं बैठ सकते। नया विवेक या तर्क ही मनुष्य का एकमात्र पथ-द्रष्टा बन सकता है।' सौन्दर्य का मूल्यांकन भी तर्क के आधार पर होता है। उनका प्रश्न है, "सुन्दर और असुन्दर में भेद और असुन्दर को सुन्दर बना सकने का प्रयत्न विवेक और तर्क के बिना निश्चित कैसे हो सकेगा? ...इसलिये सौन्दर्य का मूल तर्क ही है।" (वही, पृष्ठ 6)

यशपाल ने बड़े-बड़े महलों, मठों, मस्जिदों और समाज सेवी संस्थाओं को ललकारा है कि वे अपने भीतर झाँककर देखें। इनका आदर्शवाद लोगों को दोहरे

चरित्र के लिये कैसे बाध्य करता है। 'मुँह में राम—बगल में छुरी' की कहावत इसी आदर्शवादी अन्तर्विरोध से उपजी है। उदाहरण के लिये एक कहानी है—'ज्ञानदान' इस कहानी का प्रमुख पात्र महर्षि दीर्घ लोम है। उसने अपनी पुत्री 'सिद्धि' को माया बंधन के ख़िलाफ़ पूर्ण ब्रह्मचर्य के उपदेशों से पाला। नीड़क नामक युवक भी ब्रह्मचर्य की दीक्षा में पला। वह ब्रह्मज्ञानी और कुशल वक्ता थे। चातुर्मास में संन्यासियों की सभा में नीड़क का भाषण सुनने सिद्धि भी आती। दोनों की आँखें मिलतीं और ब्रह्मचर्य भीतर-भीतर खिसकता रहता। स्थिति दोनों के शरीर-सुख में परिणत हुई। नीड़क ने पूछा, "सच कहो, अनेक वर्ष समाधि द्वारा परम सुख में तल्लीन होने और आत्म विस्मृति में संसार को भूल जाने की चेष्टा करके भी क्या कभी तुम तृप्ति में इतनी आत्म विस्मृत हो सकी थीं, जितनी इस सम्पूर्ण रात्रि में।"

(ज्ञानदान, पृष्ठ 22)

हमारे समाज में एक विसंगति यह है कि पुरुष चाहता है कि उसकी पत्नी पतिव्रता हो और अन्य सारी स्त्रियाँ व्यभिचारिणी। उसकी लड़की का आचरण ठीक हो, शेष लड़कियाँ उसकी प्रेमिकाएँ। पुरुष कुरूप लड़की के साथ भोग करना चाहता है, पर विवाह नहीं। भूल जाता है कि दूसरी स्त्रियों के बारे में उसके जो विचार हैं, वही विचार दूसरे पुरुषों के उसकी स्त्री-लड़की के बारे में हैं। ऐसी पुरुष मानसिकता के लिये 'पाँव तले की डाल' कहानी में यशपाल एक पात्र से कहलवाते हैं—'सभी औरतें किसीं न किसी की बहनें, बेटी या स्त्री होती हैं।··· ···बहिन को भी तुम्हारी तफ़रीह का एतराज़ हो सकता है।·····मर्द होने का मतलब बेशर्मी का अधिकार नहीं है। तुम जनतंत्र और समानता की बात करते हो। जनतंत्र और समता के समाज में वही नैतिकता और तफ़रीह चल सकती है, जो सबके लिए सम्भव हो।' (चित्र का शीर्षक, पृष्ठ 92)। मूल प्रश्न है कि हर पत्नी का पातिव्रत और लड़की का सदाचार कैसे बचेगा? वासनांधता ने इस विवेक को समाप्त कर दिया है। यशपाल इसी सोये विवेक को जगाते हैं। उदाहरण के लिये—'तीस मिनट' कहानी में सेक्स के आवेग में लीन रत्ना से उसका प्रेमी कहता है, "यह क्या कह रही हो तुम, अपनी औरत की इज़्ज़त का सौदा करूँ?" यहीं यशपाल की नज़र मौजूद है। वर्ग-समाज में स्त्री और पुरुष की नैतिकताएँ अलग-अलग हैं। यह लेखक इस बात को चरित्रों के मार्फ़त दर्शाता है। 'उत्तमी की माँ' कहानी में उत्तमी एक रूपवती लड़की थी। उसके साथ कोई भी विवाह की इच्छा रख सकता था, पर शीतला निकल आने से चेहरा बिगड़ गया। तब मंगेतर ने तो इनकार कर ही दिया, दूसरे भी तैयार नहीं हुए। सभी उसके यौवन को भोगना चाहते, पर उससे विवाह नहीं। अन्ततः उसे जगह मिली संन्यासियों के सत्संग में। वह सत्संग में आँखें मूँदकर समाधि लगाती पर उसकी यौन इच्छाएँ भीतर ही भीतर जलाती रहतीं। इसी जलन ने उसे अन्ततः खा लिया। वह मर

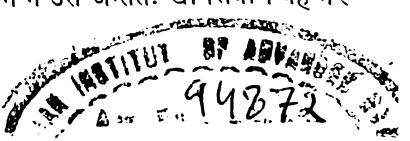

गई। 'पतिव्रता' कहानी में पढ़ी-लिखी लड़की सुमति दहेज के अभाव में, एक सेठ की तीसरी पत्नी के रूप में ब्याही गयी। वह पति सेवा के आदर्शों पर चलती रही पर सेठजी अपनी गंदी काया और बदबू से भरे मुँह को लिये हर समय नयी से नयी शादी रचाते रहे और धन लुटा कर वेश्यागमन करते रहे। 'नीहार' नामक वेश्या को उन्होंने धन लुटाकर ही सही, अंकशायिनी बनाना चाहा, पर उसने उनके गंदे शरीर से सम्पर्क अस्वीकार कर दिया। सुमति सोचती रही कि समाज जिसे वेश्या कहता है, वह कितनी समर्थ है और वह पतिव्रता कितनी असहाय।

यशपाल की कहानियाँ चाहे 'धर्मरक्षा', 'प्रतिष्ठा का बोझ', 'आतिथ्य' हों या 'वैष्णवी', 'शिकायत', 'जहाँ हसद नहीं', 'छलिया नारी', 'तुमने क्यों कहा था, मैं सुन्दर हूँ'—ऐसी कोई कहानी नहीं है, जो समाज में से न हों। ये समाज में मौजूद प्रवृत्तियों से रची गयी हैं। धर्म के नाम पर स्त्रियों पर अत्याचार को लेखक ने साहस के साथ सामने ला दिया है। दहेज-प्रथा, वेश्यावृत्ति, बहु-विवाह जैसी सामाजिक विकृतियाँ वहाँ अपने असली रूप में सामने आ जाती हैं। यहाँ स्त्रियाँ सड़ती नहीं, वे बाहर आती हैं। वे आवरणों को उतारती हैं। उनमें दमित वासनाओं की पूर्ति से तृप्ति और सुख के रास्ते नहीं खुलते, वरन् वह यथार्थ के रास्ते पर चलने के लिये कृत्रिम बंधनों को तोड़कर स्वाभाविक प्रेम की राह बनाती हैं। सदाशिव द्विवेदी ने यह बात ठीक लिखी है—"सेक्स के बिना प्रेम की पूर्ति नहीं होती, यह तथ्य उतना ही यथार्थ है, जितना यह तथ्य कि रक्त संचालन के बिना मनुष्य जीवित नहीं रह सकता। हमें सेक्स से वहीं घृणा होती है, जब वह प्रेम से अलग रहता है। हमें प्रेम से वहीं निराशा होती है, जहाँ उसका चरम परितोष सेक्स के माध्यम से प्राप्त नहीं होता।" (क्रांतिकारी यशपाल—सं० मधुरेश,पृष्ठ 182) ज़ाहिर है, यशपाल ने अपनी कहानियों द्वारा सेक्स को न तो पश्चिमी आज़ादी का मार्ग बनाया और न मुक्त यौनाचार का रास्ता रचा। वे गाँठें खोलते है—ताकि रक्त ठीक से बहे, गठिया न हो जाय। इनकी कहानियों में प्रेम और सेक्स की सापेक्षता स्थापित होती है—यौन व्यापार नहीं होता। यहाँ स्त्रियाँ विकसित होती हैं। वे सक्रिय भावात्मक आवेगों से संचालित होती हैं। वे अपना स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित करने में सफल होती हैं। वे यथास्थिति के ख़िलाफ़ विद्रोह करती हैं। वे खुद रास्ते की खोज करती हैं। 'रज़िया','नन्दी','कोकला' जैसी नायिकाएँ रचकर यशपाल नारी चरित्र को आत्माभिमान प्रदान करते हैं। यहाँ कुण्ठा और आत्म ग्लानि की सफ़ाई होती है—'चित्र का शीर्षक' जैसी कहानियों के जरिये। यह सफ़ाई मनोवैज्ञानिक रूप से होती है। इसमें केवल सुधार की रेखाएँ नहीं, बल्कि उतार-चढ़ाव का द्वन्द्वात्मक क्रम चलता है। ब्रह्म पाठ चाहे आर्यसमाज का हो अथवा बुद्ध संस्कृति का—यशपाल किसी को नहीं छोड़ते। वह भौतिक सच्चाई को बारीकी से पकड़ते हैं तथा दैहिक मनोविज्ञान

को मनुष्य की सहज होने की प्रक्रिया में उकसाते हैं। इसको पवित्रता और अपवित्रता की तराजू से नहीं तोलते। 'कोकला डकैत' कहानी में कोकला—जीने के लिये शरीर बेचती है, पर तब भी उसका जीना संभव नहीं होता। जीने के साधन उसे नहीं मिल पाते। वह डकैत बन जाती है। लोगों को डराती-धमकाती है, तो उसे सब मिल जाता है। यशपाल कहना चाहते हैं कि चाहे यौन-व्यापार हो या चोरी-डकैती—इनके कारण वर्ग समाज में मौजूद हैं। बहुत गहरे में सारी कहानियाँ समाज की वर्गीय असमानताओं से उत्पन्न विकृतियों को चिढ़ाती हैं।

यशपाल की सारी कहानियों को मिलाकर देखें तो मालूम होगा कि उन्होंने कहानी का प्लॉट चुनने में अनेक जीवन-स्थितियों को चुना है। आज़ादी के पूर्व की सामाजिक विसंगतियों और उसके बाद की चालाकियों पर उनकी निगाह बराबर जाती रही है। वे जनविरोधी प्रवृत्तियों की तलाश में निरन्तर सक्रिय रहे हैं तथा उनकी व्याख्या करते हुए अन्ततः उन्हें ध्वस्त करने के लिये यथार्थवादी प्रतिमानकों का सहारा लेते रहे हैं। वे झूठे आदर्शों पर कठोर व्यंग्य करते हैं। उनके सामने स्पष्ट था कि आदमी सामाजिक असमानताओं के कारण कुचला जाता है, इसी ज़मीन पर और उसे समाधान सुझाया जाता है परलोक की ज़मीन का। भाग्य और परलोकवाद ने बहुरंगी जामा पहन लिया है। आदमी इन्हें शाश्वत मानकर चुप हो गया। इनके साथ अज्ञात भय की अफ़ीम खिला दी गयी है। सोच और तर्क से परे। तर्क और विश्वास अलग-अलग। कैसी विडम्बना है—जिसके बीच से इस लेखक को गुज़रना पड़ा। प्रसाद के 'कंकाल' और प्रेमचन्द के उपन्यासों के संसार में भी ये विडम्बनाएँ मौजूद हैं। इन लेखकों की टकराहट 'हृदय परिवर्तन' के गाँधीवादी कमज़ोर मानकों से भी थी, इसलिये उस काल की साहित्यिक चुनौतियाँ भी इन्हें झेलनी पड़ीं। ये चुनौतियाँ जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी इत्यादि के साहित्य द्वारा आ रही थीं। यशपाल अपने लेखन और प्रगतिशील आन्दोलन—दोनों को व्यापक सामाजिक जीवन के बीच ले जाते रहे हैं। वह एक जगह लिखते हैं, "यदि प्रगतिवाद व्यापक सामाजिक समस्या के क्षेत्र में पुरानी शोषक व्यवस्था से समाज की मुक्ति के प्रयत्न में सहायक होना चाहता है तो उसे साहित्य को तर्क संगत स्वतंत्रता से शोषक व्यवस्था पर आघात करने देना होगा। इसी से नवीन समाज की संरचना के प्रति उत्साह उत्पन्न हो सकेगा।" (धर्म युद्ध, भूमिका, पृष्ठ 6)

शोषण व्यवस्था टिकी है—अपने आर्थिक नियंत्रण के कारण। शोषक और शोषित वर्गों में सामाजिक सम्बन्धों की परम्परा इसी आर्थिक नियंत्रण से बनती-बिगड़ती है। धर्म, रूढ़ियाँ, संस्कार और संस्कृति का संचालन यहीं से होता है। यशपाल इस सामाजिक समग्रता के सिद्धान्त से परिचित थे। इसकी अभिव्यक्ति उनकी पचासों कहानियों द्वारा हुई है। जैसे—'हिंसा', 'संन्यासी', 'नयी दुनियाँ','वो दुनियाँ', 'वैष्णवी', 'दुख का अधिकार', 'महादान' 'भस्मावृत चिनगारी', 'गवाही',

'भाग्य चक्र', 'सत्य का मूल्य', 'शहादत', 'फूलो का कुर्ता', 'भवानी माता की जय', 'उत्तराधिकारी', 'कुल मर्यादा', 'ओ भैरवी', 'दासधर्म', 'मक्खी या मकड़ी', 'खच्चर और आदमी', 'भूख के तीन दिन', 'कर्मफल, 'फूल की चोरी', 'काला आदमी' 'आदमी या पैसा' इत्यादि।

गाँधीजी का मूल मंत्र था—'अहिंसा परमोधर्मः।' समाज सेवियों के लिये व्यावहारिक जीवन में यह सूत्र नाटक वन गया था—सूत कातने, भजन या प्रार्थना में भाग लेने की तरह। 'हिंसा' कहानी में यशपाल इस नाटक पर प्रहार करते हैं। 'संन्यासी' कहानी में नरेन्द्र जैसा कल्पनाशील युवक विवाद के वाद परिस्थितियों के भार से त्रस्त—साधू हो जाता है। वच्चों की वढ़ती संख्या, महँगाई, वनिये का हिसाव, व्याज की अदायगी और कम वेतन उसे तोड़ देते हैं। अन्ततः भीख माँगना उसे सुगम जान पड़ा। 'वो दुनियाँ' अर्थात् स्वर्ग। स्वर्ग के लोभ में इस दुनियाँ का तिरस्कार आध्यात्म के माध्यम से रचा शोषकों के हित में औज़ार।

'महादान' कहानी में एक व्यापारी हज़ारों वोरे चावल खरीद कर गोदाम में भरवा देता है। अकाल की प्रतीक्षा करता है। अकाल के आ जाने पर धीरे-धीरे वड़ी जुगत से कीमत में और—और वृद्धि के इन्तज़ार के साथ चावल वेचता है तथा अपने मुनीमों को सतर्क रखता है। ग़रीव सैकड़ों की संख्या में रोज़ मरते हैं तो सेठजी धर्मादे से लाशों को जलाने के लिये मुफ़्त लकड़ी का प्रवन्ध करते हैं। भूख से विलविलाते लोगों के लिये एक मुट्ठी चना और निःशुल्क प्याऊ का इन्तज़ाम करते हैं। सेठजी के 'महादान' की ख़वर अख़वारों में मोटे-मोटे अक्षरों में छपती है। यह सेठजी वही हैं—जो अकाल और मृत्यु के लिये दोषी हैं, पर उनका सामाजिक विम्व है—महादानी का।

'वैष्णवी' कहानी में—समाज की प्रताड़नाएँ सहते हुए वेवस हो द्रौपदी गले में तुलसी की माला पहन लेती है, माथे और गले में चंदन पोत लेती है। वह सहारा चाहती थी—जो समाज नहीं पाने देता था। उसने समाज को ललकारा और सहारा खोज लिया।

'फूलो का कुर्ता' में पाँच साल की लड़की फूलो अपने सात साल के पति सत्तू को देखकर कुर्ते को उठाकर मुँह ढँक लेती है, उस लज्जावश, जो उसे व्यवस्था ने दी है—यशपाल कहते हैं, "हम फूलो के कुरते के आँचल में शरण पाने का प्रयत्न कर उघड़ते चले जा रहे हैं और नया लेखक हमारे चेहरे से कुरता नीचे खींच देना चाहता है।' कुरते का नीचे खींचना क्या है? इज़्ज़त और लज्जा को नक़ली मत वनाओ। 'कुल मर्यादा' में एक ब्राह्मण परिवार की मूर्खता—जहाँ सभी मर्यादाएँ निभाने की ज़िम्मेदारी स्त्री की है। गंगाधर एक कांग्रेसी नेता पत्नी को समाज में शामिल करना चाहते हैं, परदा हटाना चाहते हैं, परन्तु "उनके माता-पिता वहू को साथ लेकर गाँव को लौट गये। उन्होंने अपने कुल की मर्यादा कोफिर

घर के जनाने परदे में सुरक्षित कर दिया।" (उत्तराधिकारी, पृ० 102)

'उत्तराधिकारी' कहानी क्या है ? सामन्ती सम्बन्धों में, पुंसत्वहीन पुरुष की सन्तान इच्छा। सम्पत्ति का उत्तराधिकारी किसी को तो होना चाहिये और उसे 'पुत्र' ही कहलाना चाहिये। इस इच्छा की पूर्ति के सारे प्रपंच—धर्म, भाग्य, पंचायत और रूढ़ियां तैयार करते हैं। यशपाल ऐसे भगवान को कठघरे में खड़ा करते हैं, जो सामान्य जन को नक़ली संतोष देता है, पर शोषकों को किसी प्रकार भी अनाचार की छूट देता है।

'ओ भैरवी' कहानी संकलन की भूमिका में वह लिखते है—"मैं राजा हरिश्चंद्र द्वारा ऋण शोध के लिये पत्नी को बाज़ार में बेच डालने की कर्तव्यपरायणता के लिये भी आदर की अनुभूति उत्पन्न नहीं कर सकता, उसे धर्म नहीं समझ सकता।" (पृष्ठ 7)

'ओ भैरवी' के अलावा—'देवी की लीला', 'सामन्ती कृपा', 'गौमाता', 'महाराज का इलाज', 'भगवान का खेल', 'चौरासी लाख योनि', 'खुदा का ख़ौफ़', 'खुदा-खुदा की लड़ाई', 'भगवान के पिता के दर्शन' जैसी बहुत-सी कहानियाँ हैं—जहाँ सामन्ती जीवन मूल्यों के लिये शोषकों के हित में भगवान का इस्तेमाल किया गया है। इसके निमित्त यशपाल की एक अलग कहानी—'भगवान किसके भी है। सामन्ती मूल्य क्या है—इसमें राजा और दास के धर्म अलग-अलग पर राजा द्वारा निर्धारित। 'दासधर्म' कहानी में दासी दीमा जो राजा सातवाहन की भोग्या हैं, भूल वश या अपनी सहज प्रेरणा से दास आन्द्रेकस से प्रेम कर बैठी। इस अपराध का दण्ड मिला—दोनों को हाथियों के पैरों तले कुचलने का। यशपाल कांग्रेस के ईश्वर प्रेम पर इसीलिये चिढ़ते थे क्योंकि सामन्ती-प्रथा ने ईश्वर को अमीरों के पक्ष में कर दिया है। वह लिखते हैं—"कांग्रेस आन्दोलन में सहयोग दे पाने की शर्त—ईश्वर में विश्वास होना हो सकती है तो फिर जनता को मूर्ख बनाये जा सकने की कोई सीमा नहीं।" (देशद्रोही, पृष्ठ 105)।

यशपाल पूंजीवादी मूल्यों के अन्तर्विरोधों को भी कहानियों से सामने लाते हैं तथा उनमें वर्ग संघर्ष की स्थितियाँ खोजते हैं। उदाहरणार्थ—'नई दुनियाँ' कहानी है। लेखक ने यहाँ बताया कि कारखानों में काम करते श्रमिकों की वास्तविक मज़दूरी को छिपाने के लिये तथा उनके दमन के लिये कैसे हथकंडे अपनाये जाते हैं। मैनेजर सरीन मज़दूर नेता माथुर को खरीदने के लिये तरह-तरह के प्रलोभन देता है। पत्नी को भी समझाने के लिये लगाता है और अन्ततः लारी के नीचे उसे कुचलवा देता है। माथुर का सपना है—नयी समाजवादी व्यवस्था का। श्रीमती सरीन में असमर्थ मानवीय संवेदना थी, जो माथुर के पक्ष में झलक उठती है। सरीन इतना अमानवीय कि वह पत्नी और पुत्री को भी व्यवस्था की रक्षा के लिये औज़ार बना लेता है। कहानी में संगठित मज़दूरों ने अपने नेता की हत्या का बदला

सरीन को मार कर लिया। लेखक इस विश्वास को दृढ़ता प्रदान करता है कि लक्ष्य को पाने के लिये एक दो हत्याओं के आतंक से मज़दूरों का उबाल 'मज़दूर ज़िन्दाबाद' ठंडा नहीं हो सकता। यह नयी दुनिया के रचे जाने का संकल्प है। ऐसी ही एक दूसरी कहानी है—'भवानी माता की जय'। इसमें मिल मालिक, उनका स्वामिभक्त जमादार मितान सिंह, जमादार का दामाद—भूरे और लड़की भवानी के साथ संगठित मज़दूरों की कथा है। मज़दूर अपने हक़ की लड़ाई लड़ते हैं। स्वामिभक्त जमादार ने चाहा कि दामाद मज़दूरों के साथ न जाये—इसलिए उसने लड़की को अपने पास रोक लिया। दामाद नहीं माना, अन्ततः लड़की का भी वर्ग बोध जागा और वह भी साथ हो गयी। भवानी मालिक की गोली से मर गयी तो जमादार मितान सिंह भी मज़दूरों के साथ शामिल हो गया। कहानी में मज़दूरों के पक्ष में लेखक ने उपदेशों की झड़ी लगा दी है और कहना चाहा है कि वर्ग की लड़ाई अन्ततः वर्ग की ही होती है।

यशपाल शोषितों की जिजीविषा और उसकी अपार शक्ति को बुनियाद से ही पकड़ते हैं। वह मानते हैं कि इनकी असली शक्ति यही है, जिससे वे कष्ट झेलते, टूटते हुए ज़िन्दा रहते हैं। विडम्बना यह है कि वे अपनी इस मूल की पहचान को खो बैठे हैं। ज़रूरत है—उन्हें याद दिलाने के साथ-साथ दर्शाने की। तंत्र के जाल में लोग फँस गये हैं। लेखक उन्हें निकालने का संघर्ष करता है। 'मक्खी या मकड़ी' कहानी के आरंभ में वाक्य है—"भले लोग इस जाल में पड़कर असहाय मक्खियों की तरह छटपटाते दम तोड़ते रहते हैं।" (खच्चर और आदमी, पृष्ठ 20)।

'भूख के तीन दिन' कहानी में बेरोजगार नन्दन तीन दिन से भूखा रहता है। उसे कहीं काम नहीं मिलता। योग्यता और स्वाभिमान की कद्र नहीं है। बेरोज़गार आदमी चाहता है कि सरकार उसे गिरफ़्तार कर ले। वहाँ भोजन तो मिलेगा ही। अन्ततः एक पुलिस ऑफीसर की सहानुभूति के सामने वह पराजित हो जाता है। इस प्रकार, "नन्दन परास्त हो गया; कानून से नहीं सौजन्य से।" स्थितियों से निपटने के लिये यद्यपि यह कहानी किंचित् आदर्शवादी हो गयी है पर तब भी इसमें बेरोज़गार आदमी की मानसिकता का चित्रण पूरी शिद्दत के साथ हुआ है। यशपाल देखते हैं कि आदमी कभी-कभी अपने संस्कारों की जकड़न में फँसकर घुट-घुट मरता है। 'खच्चर और आदमी' में वह दर्शाता है कि शिमला के हिमपात के बीच खच्चर अपनी रक्षा कर लेता है, पर तथाकथित वैष्णव नहीं। उन्होंने कपड़े नहीं बदले और ब्रांडी पीकर गरम नहीं हो सके। लेखक का निष्कर्ष है—"खच्चर ने स्थिति समझकर आत्मरक्षा कर ली और संस्कारों से बँधा मनुष्य स्थिति अनुकूल आचरण नहीं कर सका।" (खच्चर और आदमी, पृष्ठ 104)

स्थिति के अनुकूल आचरण कराने के लिये ही यशपाल का सारा रचनात्मक संघर्ष है। वह चाहते हैं कि रचनाकार अपनी रचना से यह काम करे—

उसे व्यवसाय के लिये इस्तेमाल न करे । 'भस्मावृत चिनगारी' संकलन में उन्होंने लिखा, "कला और साहित्य का उद्देश्य सभी अवस्थाओं में मनुष्य में नैतिकता और कर्तव्य की प्रवृत्तियों की चिनगारियों को भावना की फूंक मार-कर सुलगाता ही रहता है ।" (पृष्ठ 7)। इसी अभिप्राय से उन्होंने एक कहानी लिखी...'भस्मावृत चिनगारी'। इसमें एक कलाकार अपनी कला से मनुष्य की वास्तविक शक्ल पेश करता है—रोज़ी-रोटी कमाने के बजाय । पैसे का इतना संकट उसके सामने कि पत्नी मर गई और वह खुद भी बेहाल है। वह देखता है—भिखारियों को भूख-शीत से मरते हुए तो उसका कर्तव्य जाग उठता है। वह पेट भरने के बजाय मनुष्य की जिजीविषा जगाता है और उसकी सोयी अन्तरात्मा को। यशपाल ने खुद भी इस दर्द को भोगा है। उनकी कहानियाँ भी इसलिए पत्रिकाओं से लौटा दी जाती थीं, क्योंकि वह समाज की स्थितियों का चित्रण करते थे। 'उत्तमी की माँ' की भूमिका में लिखा है, "आज मुझे प्रायः ही पत्र-पत्रिकाओं से कहानी भेजने के लिए अनुरोध आते रहते हैं, परन्तु इस संग्रह की कहानियाँ 'भगवान का खेल', 'न कहने की बात', 'भगवान के पिता के दर्शन', 'नक़ली माल' कहानियों को प्रकाशित कराने में बाधा भी अनुभव हुई। आग्रह के उत्तर में कहानी भेजने पर प्रायः दूसरा अनुरोध मिला, कहानी तो बहुत अच्छी है, परन्तु यह चीज़ संचालकों को न पचेगी या यह कहानी प्रकाशित कर झंझट में नहीं फँसना चाहते ।" (पृष्ठ 6)

इस तरह यह है, यशपाल की कहानियों का फलक । इन कहानियों में लेखक ठोस यथार्थ, कल्पना और विचारधारा की त्रिवेणी से रचना की सरिता बहाता है। तीनों के सन्तुलन को भरपूर कोशिश करता है—पर कहीं-कहीं अशक्त भी हुआ है। तीनों के बारे में यशपाल की अपनी धारणाएँ सदा स्पष्ट रही हैं, इसलिये उलझनों और भ्रमों का शिकार वह कभी नहीं हुआ । उदाहरण के लिये यथार्थ और कल्पना के मेल के बारे में उनका कहना है, "हमारी कल्पना का आधार जीवन की ठोस वास्तविकताएँ ही होती हैं। इसीलिये कथा कहानी के रूप में कल्पना का महत्त्व है। हमारी कल्पना या तो अतीत के सुख-दुःख की अनुभूति के चित्र बनाकर इससे सुख उठाना चाहती है या आदर्श की ओर संकेत कर समाज के लिये नया नक्शा तैयार करने का यत्न करती है ।" 'पिंजरे की उड़ान, (पृष्ठ 4)

यशपाल ने अपने द्वारा रची कहानियों में ठोस यथार्थ को जगह दी तथा अतीत के गर्भ से शोषित-पीड़ित पर ढाये जाते ज़ुल्मों को खोज़ लाये । इतिहास बोध को ज़िन्दगी में बदलने के लिये उन्होंने कल्पना का सहारा लिया। भविष्य के समाज का नक्शा भी उन्होंने कल्पना से ही बनाया, पर यह कल्पना उनके स्वीकृत आदर्श —मार्क्सवाद से प्रेरित थी। कई बार इनकी कहानियों में मार्क्सवाद के हावी होने का आरोप भी लगा । यशपाल ने आरोप का उत्तर दिया,"हो सकता है मेरी

कहानियों में मार्क्सवादी प्रभाव हो, परन्तु कम्युनिस्ट पार्टी का मैं कभी सदस्य नहीं रहा। उससे मेरी सहानुभूति रही है···मैंने निश्चित विचारधारा में कभी बराबर विश्वास नहीं किया।···सप्रयोजनीयता मेरी कहानियों का मुख्य आधार रहा है।' (संकेत—सं० उपेन्द्रनाथ अश्क़, पृष्ट 411) निश्चित विचार धारा पर कभी विश्वास नहीं रहा का अर्थ, यशपाल के विकास में है। वह आर्यसमाज, आतंकवाद और अन्ततः मार्क्सवाद की ओर आये। उनकी कहानियों में जहाँ मार्क्सवाद हावी है, वहाँ वास्तव में कल्पना शक्ति की कमी रहती है। वहाँ वह सरलीकृत निष्कर्षों में झुलस जाते हैं। वहाँ उनकी मध्यवर्गीय चेतना प्रभावशील रहती है। जहाँ वह अपनी अनुभूति को जीवन्त सच्चाई से नहीं उठाते, वहाँ यह दोष स्वाभाविक है। विचार धारा के हावी होने का दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि वक़ौल यशपाल पहले उन्हें कभी-कभी किसी रचना का आइडिया मिलता है, फिर वे उस तरह के चरित्रों की या तो खोज करते हैं या गढ़ लेते हैं। इस रचना-प्रक्रिया में संभव है कि आइडिया पात्रों में घुल-मिल न पाता हो। यह प्रसंग यशपाल की कुछ कहानियों पर लागू होता है। यह उनकी कहानियों के लिये सामान्य सच्चाई नहीं है। वह चरित्रों में भी विचारों कीं खोज करते हैं, तब वे चरित्र प्रतिनिधि बन जाते हैं। उदाहरण के लिये 'सत्य का द्वन्द्व' और 'तुमने क्यों कहा था, मैं सुन्दर हूँ'—कहानियाँ।

'सत्य का द्वन्द्व' कहानी में पुरुषोत्तमदास टंडन का व्यक्तित्व केन्द्र में है, जो कुल मिलाकर किसी कांग्रेसी नेता का छद्म उजागर करती है। दूसरी कहानी अश्क़जी द्वारा बतायी गई सच्ची घटना पर आधारित है। उल्लेखनीय बात यह है कि आप बीती घटना पर अश्क ने 'बेबसी' तथा सुनी घटना पर यशपाल ने यह कहानी लिखी। दोनों कहानियों में जो अन्तर है वह दोनों की रचनात्मक क्षमता का है। यशपाल की कहानी में कोई विचार निकलता है जबकि अश्क़ की कहानी अपने प्रकृत रूप में, अन्तर की तहों को बिना भेदे हुए।

यशपाल ने अपने जीवन में यात्राएँ खूब की हैं देश, विदेश की। इसीलिये कहानियों में स्थान, नाम और स्थितियों का दायरा काफ़ी बड़ा है। वैसे तो यात्रा-वृत्त और संस्मरण अलग से लिखे हैं, पर कहानियाँ प्रकृति वर्णन के मामले में या पात्रों के चयन के मामले में कैसे बच सकती थीं? उदाहरण के लिये, 'सच बोलने की भूल' जैसी कहानी है, जिसमें लेखक ने उत्तरी क्षेत्र की पहाड़ी यात्रा का वर्णन किया है। पहाड़ी लोगों का भीतर से कोमल किन्तु शहरी सफ़ेदपोशों के द्वारा ठगे जाने के कारण कठोर हो गया स्वभाव इस कहानी में मार्मिक ढंग से उकेरा गया है। और भी कहानियाँ इस तरह की हैं। यशपाल की कहानी कला कुल मिलाकर एक सक्रिय आदमी की लक्ष्य भेदी प्रयत्नों का सिलसिला है। वे क़लम के मज़दूर की तरह खोदने और बनाने का काम आजीवन करते रहे। सामन्ती और पूँजीवादी मूल्यों के टकराव से वह समाजवादी आधुनिकता अर्जित करने का प्रयास करते रहे।

उपन्यास लेखक के रूप में

यशपाल के जीवन का अधिकांश हिस्सा लेखक के रूप में वीता। लेखक के नाते उन्होंने ज़्यादातर कहानियाँ और उपन्यास लिखे। प्रकाशित उपन्यासों की संख्या कुल ग्यारह है। प्रकाशित उपन्यास क्रमशः हैं—दादा कामरेड (1941), देशद्रोही (1943), दिव्या (1945), पार्टी कामरेड (1946), मनुष्य के रूप (1949), अमिता (1956), झूठा सच(1958, पहला भाग), झूठा सच (1960 दूसरा भाग), बारह घंटे (1963), अप्सरा का शाप (1965), क्यों फँसे (1968), मेरी तेरी उसकी बात (1975)।

यशपाल का पहला उपन्यास है—**दादा कामरेड**, यह राजनीतिक कथावस्तु पर आधारित है। लेखक की आतंकवाद से मुक्त होकर मार्क्सवाद पर जुड़ती आस्था की तस्वीर इसमें मिलती है। इनके अन्य सहयोगी, जो आतंकवादी गतिविधियों के अगुआ थे—इसमें मौजूद हैं। इस अर्थ में भारत की राजनीति में आतंकवाद की प्रामाणिक जानकारी यहाँ है। क्रांतिकारी, अहिंसा की राजनीति पर विश्वास नहीं करते थे। वे आतंक पैदा करके अंग्रेज़ों को खदेड़ना चाहते थे। उनके संगठन में उनकी कमज़ोरियाँ थीं किन्तु उनके अद्‌भुत साहस और निष्ठा की सराहना किये बग़ैर नहीं रहा जा सकता। दोनों का रेखांकन इस उपन्यास में है। क्रांतिकारियों की गुप्त गतिविधियों के रोमांचक वृत्तान्त यहाँ भरे पड़े हैं। उपन्यास के दादा—चन्द्रशेखर आज़ाद हैं और कामरेड—खुद यशपाल। चन्द्रशेखर कोरे आतंकवाद पर विश्वास करते थे, डकैती द्वारा जनक्रांति के लिये पैसा वटोरते थे जवकि कामरेड क्रमशः मज़दूरों के संगठन का मार्ग स्वीकार करता है। वह पूँजीवाद के ख़िलाफ़ लड़ने की तैयारी, शैल, रावर्ट इत्यादि पात्रों से सहयोग लेकर करता है। वह क्रांतिकारियों की समझ को झकझोरता है। वैज्ञानिक समझ की प्रक्रिया के साथ लेखक अमरनाथ, गिरधारी लाल, शैल के पिता, अख़्तर और उसकी पत्नी और ज़मीला आदि चरित्रों में वैचारिक परिवर्तन लाता है। उपन्यास में अध्यायों का नामकरण दुविधा की रात, नये ढंग की लड़की, तीन रूप, मनुष्य, गृहस्थ, सुलतान—की तरह किया गया है।

उपन्यास की कथा का दूसरा पक्ष स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की नैतिकता पर चोट करता है। इसमें शैल अविवाहित होती हुई भी कई पुरुषों जैसे, खन्ना, बी० एम०, रावर्ट, हरीश से शारीरिक सम्बन्ध रखती है। वह मात्र जीव शास्त्रीय आव-

श्यकता की पूर्ति के लिये प्रेमी की अधिकार-भावना को अस्वीकार करती है। हरीश पहले क्रांतिकारी भावना से लैस होने की शर्त में स्त्रियों से शारीरिक सम्बन्ध न रखने की प्रतिज्ञा के अनुरूप आचरण करता है। शैल के प्रति वह निर्लिप्त रहता है तो शैल उधर झुकती है। बाद में हरीश न केवल उसे चाहने लगता है बल्कि उसके प्रति कामातुर हो उसे निरावृत्त देखना चाहता है। वह निरावृत्त होती भी है और अन्ततः उसके शारीरिक सम्पर्क से गर्भवती होती है। हरीश की फाँसी की सज़ा के बावजूद वह इस गर्भ की रक्षा करती है। उपन्यास में यशोदा और अमरनाथ के दाम्पत्य तथा हरीश की ओर नैनसी के प्रेमातुर होने के प्रसंग भी हैं। इनमें उतार-चढ़ाव हैं। मज़दूर बस्ती में अख़्तर परिवार की एक अलग कहानी है। इन प्रेम सम्बन्धों के सृजन में शैल का एक प्रश्न शायद उत्तर की खोज में विचरण करता है। प्रश्न है—"क्या मनुष्य हृदय का स्नेह केवल एक ही व्यक्ति पर समाप्त हो जाना ज़रूरी है।" (**दादा कामरेड**, पृष्ठ 109)।

इस उपन्यास की कमज़ोरी ही समझना चाहिये कि लेखक यौन सम्बन्धों की स्वाभाविकता की तलाश में उसे अराजकता की हद तक पहुँचा देता है। यहाँ यह लगता है कि दृश्य में मौजूद फ्रायड का अतिरिक्त प्रभाव न चाहते हुए भी आ गया है। उपन्यास में चरित्रों के मानसिक घात-प्रतिघात के विश्लेषण में मनोवैज्ञानिक गहराई नहीं है, इसीलिये कई जगह विचार वक्तव्यों जैसे लगते हैं। कई स्थल अनावश्यक हैं। वैसे इन कमज़ोरियों के बावजूद उस परिवेश को समझने तथा राजनीतिक शिक्षा के उद्देश्य से यह एक ज़रूरी उपन्यास है।

'**देशद्रोही**' लेखक का दूसरा राजनीतिक उपन्यास है, सन् 1942 की राष्ट्रीय घटनाओं पर आधारित। यह समय, कांग्रेस और कम्युनिस्ट पार्टी के बीच संघर्ष तथा दुनिया में फासिस्ट शक्तियों एवं सोवियत संघ के नेतृत्व में मित्र राष्ट्रों के बीच जंग का है। उपन्यास के दो ध्रुव हैं, पर यशपाल अपनी समझ से उन्हें जोड़ते हैं। वे राजनीति और प्रेम सम्बन्धों को एक संगति में पेश करते हुए इसे विकास प्रक्रिया की खोज मानते हैं।

दिल्ली राजनीति के केन्द्र में है, अतः उपन्यास का कथासूत्र वहीं से निकलता है। इसका प्रमुख पात्र खन्ना, जो सेना का डॉक्टर है, राजस्थान के वजीरियों द्वारा पकड़ लिया जाता है। वहाँ सालभर रहता है। बाद में वह ग़जनी और रूस की यात्रा पर भी जाता है। जहाँ से लौटने के बाद वह मज़दूरों के बीच काम करता है। खन्ना की यात्रा के प्रसंगों में उनकी वासनात्मक इच्छाएँ भी बाहर आती हैं। पहले लेखक वजीरियों की ज़िन्दगी का वर्णन करता है। अंग्रेज़ों के प्रति घृणा और उनकी खुद की संतोष भरी ज़िन्दगी उपन्यास में अच्छी तरह अंकित है। पठान सुन्दरियों की स्वाभाविक यौन इच्छाएँ, यहाँ लेखक ने देखी हैं। डॉ० खन्ना इस परिवेश में आकर यथार्थ के दूसरे पहलू का अनुभव करते हैं। वह मानते हैं कि

ज़िन्दगी का एक ढर्रा नहीं होता और न नैतिकता के नियम सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक होते हैं। आगरा-दिल्ली और इस इलाके में कितनी कुछ असमानताएँ हैं। वजीरियों ने डॉ० खन्ना को मुसलमान बना लिया तो भी कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा। उपन्यास में डॉ० खन्ना का यह आत्ममंथन उसके मध्यवर्गीय संस्कारों को तोड़ता है, "जैसे हमारे यहाँ की स्त्रियाँ अपने पति के लिये प्राण निछावर करने के लिये व्याकुल रही हैं, वजीरी स्त्रियाँ वैसे नहीं ! क्या हमारे यहाँ और तरह की स्त्रियाँ होती हैं और वजीरिस्तान में दूसरी किस्म की ? देहली आगरे की गलियों में जन्म ले लेने से स्त्री त्यागमयी, पतिव्रता और बंजर पहाड़ों में पैदा हो जाने से स्वार्थी, क्रूर और कुलटा हो जाती है ?" (देशद्रोही, पृष्ठ 49)।

डॉ० खन्ना के अपहरण की सूचना उनके परिवार में उनकी मृत्यु के रूप में पहुँचती है। उनकी पत्नी श्रीमती राजदुलारी खन्ना दुःखी होती हैं, पर वह शेष जीवन को कूड़ेदानी में नहीं फेंकती। वह कांग्रेसी नेता वद्रीबाबू से पुनर्विवाह कर लेती हैं। खन्ना यात्राओं से वापस आने के बाद यह जानते हैं, तो राजदुलारी के निर्णय से सहमत हो जाते हैं। चन्दा से उनके सम्बन्ध होते हैं, पर इस धारणा के साथ कि, "पुरुष की वंश-रक्षा के लिये संतानोत्पत्ति का साधन होने के अतिरिक्त स्त्री का अपना व्यक्तित्व और संतोष भी कोई चीज़ है।···ऐसे घर से ही क्या, जिसमें तुम्हारा कुछ भी व्यक्तित्व नहीं, जिसमें तुम्हारी इच्छा का मूल्य नहीं, वह घर तुम्हारा तो न हुआ, तुम घर की एक वस्तु मात्र हो।" (वही, पृष्ठ 244)

चन्दा स्त्री रूप में अपने व्यक्तित्व के विकास के लिये निरन्तर संघर्ष करती है। उपन्यास का यह पक्ष रोमानी वृत्तान्तों से भरा है, पर उसमें वर्जनाओं के ख़िलाफ़ लेखक की लड़ाई ही अधिक है। साम्प्रदायिकता से मुक्ति का भी प्रयत्न इस जगह मिलता है। तद्विषयक वृत्तान्तों के विस्तार से ग़लतफ़हमी बनती है कि क्या लेखक का लक्ष्य यही तो नहीं ? साथ ही, यौन प्रसंगों की अराजकता के लक्षण अलग अलग स्थितियों में मिलते हैं पर सब कुछ अन्त में दूसरी तरफ़ ढल जाता है, राजनीतिक दिशा की ओर। 'देशद्रोही' का राजनीतिक पक्ष काफ़ी दिलचस्प है। इसके पात्र अपनी व्यक्तिगत समस्याओं से आत्म संघर्ष करते हैं तथा राष्ट्रीय राजनीतिक प्रश्नों से भी जूझते है। इसमें लम्बी-लम्बी बहसें हैं, जो प्रश्नों के जवाब खोजती हैं। वद्रीबाबू, गाँधीवादी शिवनाथ—कांग्रेसी समाजवादी, और डॉ० खन्ना कम्युनिस्ट। तीनों के बीच यह बहस होती है। अन्त में लेखक कम्युनिस्ट राजनीति को सही सिद्ध करता है। तर्क की प्रक्रिया सार्थक और वैज्ञानिक है। खन्ना के जरिये उस काल की राजनीति में कम्युनिस्टों की स्थिति का तार्किक विश्लेषण है।

'देशद्रोही' में रोमान और राजनीति का मेल बराबर बना रहा है। कहीं-कहीं रोमानी अवसरों में लेखकीय आवेश ज़्यादा ताकतवर हो गया है। प्रभाव की दृष्टि

से इसीलिये आलोचकों ने आक्षेप किये हैं। यह उनकी कमज़ोरी हो सकता है पर यशपाल अपना उद्देश्य कभी कहीं भूले। उद्देश्य की रक्षा में तो वह रचाव की बातें भीं भूल जाते रहे हैं। उपन्यास के परिचय में उन्होंने अपनी मंशा लिख दी है। वह यह कि, "लेखक यदि कलाकार भी है तो उसके प्रयत्न की सार्थकता समाज के दूसरे श्रमिकों की भाँति कुछ उपयोगिता की सृष्टि करने में ही है।"

कालक्रम की दृष्टि से '**दिव्या**' यशपाल का तीसरा उपन्यास है, पर इसकी कथावस्तु पहलों से भिन्न ऐतिहासिक है। इस आलोक में वह पहली बार एक विशिष्ट कृति प्रस्तुत करते हैं। इतिहास से कथानक लेकर आचार्य चतुरसेन,भगवती चरण वर्मा और राहुल पहले से लिखते आ रहे थे। चतुरसेन की दृष्टि में अतीत वर्तमान को छोटा कर देता है, भगवतीचरण की दृष्टि में मनुष्य परिस्थितियों की कठपुतली होता है, जबकि राहुल और यशपाल जीवन के यथार्थ को अतीत से खोजते हुए उसमें वर्तमान की विकासमान धारा पा जाते हैं। यह काम इतिहास दृष्टि, वर्तमान दृष्टि और कल्पना के संयोग से पूरा होता है। यशपाल के अनुसार "दिव्या इतिहास नहीं, ऐतिहासिक कल्पना मात्र है" (प्राक्कथन)। उपन्यास में तेरह अध्याय हैं—मधु पर्व, धर्मस्थ का प्रसाद, प्रेस्थ, आचार्य प्रवर्धन, आत्म-समर्पण, विकट वास्तव, तातधर्मस्थ, दारा, अंशुमाला, सागल, पृथुसेन और रुद्रधीर मल्लिका और दिव्या। ये सारे शीर्षक चरित्र, प्रवृत्ति और स्थानवाची हैं।

इसकी कथा बौद्ध कालिक है। यवन के राजा मिलिन्द ने भद्र में अपना राज्य तो बसाया, पर वह भिक्षु हो गया। 'कुल गणराज्य परिषद्' ने महासेनापति मिथो-द्रस को गणपति बना दिया तथा धर्मास्थान का दायित्व महापंडित देव शर्मा की न्याय-व्यवस्था के अधीन रहा। कुल गणराज्य और धर्म की स्थापना के बीच विरोध की लहरों के कारण ब्राह्मण सामन्तों, दासों और श्रेष्ठियों के बीच सत्ता का संघर्ष शुरू हुआ। इस संघर्ष में एक अन्य व्यवस्था कायम होती है, जिसमें समस्त सम्पत्ति गणराज्य को दी जाती है और प्रजा के लिये समान न्याय, दासों की मुक्ति और बलि से मुक्ति, के नियम लागू होते हैं। दास पुत्र पृथुसेन सेनापति बन पाता है। इससे भिन्न व्यवस्था में धन की महिमा कायम होती है। धन के आधार पर गण की सदस्यता मिलती है, इसलिये महा श्रेष्ठी प्रेस्थ गण संवाहक बन जाते हैं। रुद्रधीर मगध से वापस आते हैं—वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था देखकर तो वे इसी तरह के शासन के लिये यहाँ भी कुचक्र चलाते हैं। सफलता मिलने पर वर्णाश्रम शासन कायम हो जाता है। शूद्र और दास फिर से नीच मान लिये जाते हैं।

इस उपन्यास में वर्ग के रूप में—बौद्ध, दास, सामन्त, ब्राह्मण आदि हैं। एक ओर सागल और मथुरापुरी के विलास हैं, दूसरी ओर चार्वाक निरूपित भौतिक वादी सूत्र। दिव्या आजीवन नारी मुक्ति के लिये संघर्ष करती है। उसके लेखे कुल

नारी होने में बंधन और गुलामी है—वेश्या होने में नारी की स्वतंत्रता। वह रुद्रधीर से कहती है—"ज्ञानी आचार्य, कुलवधू का सम्मान, कुल माता का आदर और कुल महादेवी का अधिकार आर्य पुरुष का प्रश्रय मात्र है।" (पृष्ठ 213) वह मारिश को समर्पित होती है, क्योंकि वह, "आश्रय का आदान-प्रदान चाहता है। वह नश्वर जीवन में संतोष की अनुभूति दे सकता है।" (पृष्ठ 214) जो दिव्या दर-दर ठोकर खाती दारा और अंशुमाला के वेश में भटकती रही, वह अन्ततः भौतिक जीवन में समानता के अधिकार से एक पुरुष का वरण करती है। यहाँ यशपाल पुनः यौन सुख और सन्तानोत्पत्ति को जीवन की अनिवार्यता कहकर पात्रों का चयन करते हैं। दास वर्ग और स्त्रियों को मुक्ति के रास्ते पर ले चलते हैं—दिव्या, सीरो, पृथुसेन और मारिश जैसे पात्रों की कल्पना करके। यह उपन्यास संक्रमणकालिक स्थितियों की कथा है।

यशपाल का अगला राजनीतिक उपन्यास—'**पार्टी कामरेड**' है। कालक्रम की दृष्टि से इसका स्थान चौथा है। यह सन् 1945 के चुनाव और बम्बई के नाविक विद्रोह की पृष्ठभूमि में है। इसके कथातंतु भी रोमान और राजनीति के सहयोग से बुने गये हैं। रोमानी प्रवृत्तियों को उजागर करती है—स्त्रीपात्र गीता। वह पार्टी का काम करती है। चुनाव के लिये पार्टी फंड संग्रह के दौरान एक असामाजिक तत्त्व सेठ भावरिया से मिलती है। गीता उसे बदलती है, जिससे उसमें साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ भावनायें उभर आती हैं। भावरिया इस दिशा में सक्रिय होकर जान भी दे देता है। गीता और भावरिया का सम्पर्क यौन तुष्टि तक सीमित न रहकर वैवाहिक रूपान्तरण का रूप ले लेता है। यशपाल की नज़र में क्रान्तिकारियों के जीवन में औरों की तरह ही यह अनिवार्यता है, इसलिये उसे छिपाना अपराध है। उनके शब्द हैं—"कुछ लोग इसे प्रचार कहेंगे परन्तु यदि वास्तविक बात न कही जाय तो क्या बन्दर, हाथी और गधे का वास्तविक परिचय का वर्णन हो सकेगा? जिन लोगों की कहानी लेखक लिखता है, उनके विचारों और व्यवहार का वर्णन करना उसका वास्तविक परिचय है, प्रचार नहीं।" (भूमिका)

उपन्यास का राजनीतिक कथ्य कम्युनिस्ट पार्टी के तत्कालीन कार्यक्रमों पर आधारित है। उन्होंने कांग्रेस पार्टी के अन्तर्विरोध, पूँजीवाद से मेल-जोल और उसकी जन विरोधी नीतियों को उजागर किया है। इसी कारण साम्यवादियों और कांग्रेस में टकराहट भी है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक विवाद भी इस टकराहट का कारण है। नौ सैनिकों की हड़ताल इसी समय हुई और साम्यवादी दल ने उनका समर्थन किया, जबकि कांग्रेस ने नहीं किया। अंग्रेज़ों ने इस हड़ताल का दमन किया। उपन्यास में इसे पूरी संजीदगी के साथ पेश किया गया है। कला की दृष्टि से पूर्व की कमज़ोरियाँ इसमें भी मौजूद हैं। '**मनुष्य के रूप**' उपन्यास में पहाड़ी अंचल में रहने वाली विधवा सोमा केन्द्रीय पात्र है। वह सुन्दर है। कम उम्र में उसका पति

मर गया। सास-ससुर-जिठानी के लिये अब वह एक मात्र दासी है। सोमा के माँ-बाप ने उसे पाँच सौ रुपये में बेचा था और विधवा हो जाने पर सास-ससुर भी बेचने की तैयारी में हैं। धर्नासिंह एक ड्राइवर है। इस इलाके की सड़कों पर वह मोटर चलाते-चलाते सोमा की व्यथा कथा जान गया है। वह उसकी ओर आकर्षित भी है, अतः वह उसे बचाता है। वह उसे भगा ले चलता है। सोमा का ससुर उस पर मुक़दमा चला कर जेल भिजवा देता है। पुलिस वाले धर्नासिंह को छुड़ा देने का वादा कर सोमा को भोगते हैं, पर इससे कोई फ़ायदा नहीं होता। वह भटकती है। असहाय सोमा की भेंट कम्युनिस्ट भूषण से होती है। वह उसे एक धनी परिवारी लाला ज्वाला सहाय सरोला की कोठी में रखवा देता है। इस परिवार की लड़की मनोरमा वामपंथी विचारों से प्रभावित और भूषण के प्रति अनुरक्त है। अतएव मनोरमा की सहानुभूति से सोमा उस परिवार में कुछ दिन पारिवारिक सदस्य की तरह रहती है पर बाद में उसे निकाल दिया जाता है। जेल से छूटकर धर्नासिंह आया तो वह भी लालाजी के यहाँ कार चलाने लगा। सोमा और धर्नासिंह कुछ समय के लिये पति-पत्नी की तरह रहे हैं। धर्नासिंह को यह बात मालूम रहती है कि सोमा ने पुलिस वालों को अपना शरीर सौंपा है। उसके मन में कुण्ठा रहती है—इस बात की। इधर कुछ चरित्रहीन लोग सोमा के पीछे पड़ते हैं। धर्नासिंह उसे बचाने की कोशिश में एक दो को मार डालता है और जेल जाता है। जब छूटता है तो सेना में भरती होता है और बाहर आकर सोशलिस्टों के साथ काम करने लगता है।

इस बीच सोमा मनोरमा के परिवार से निकाली गई तो बरकत नामक ड्राइवर के साथ बम्बई पहुँच गई। उसके लिये शारीरिक नैतिकता का कोई अर्थ नहीं बचा था, इसलिये उस रास्ते से गुज़रते हुये पहाड़िन नाम की अभिनेत्री बन गयी। भूषण पहले ही बम्बई आ गया था—कम्युनिस्ट पार्टी के अख़बार 'लोक युद्ध' में काम करने के लिये। मनोरमा अपने विचारों और स्वतंत्र मिजाज़ के कारण परिवार में कलह का कारण बनने लगी, तो उसने भी बम्बई के एक सम्पन्न पारसी युवक सुतली वाला से विवाह कर लिया। वह बम्बई आ गयी। तीनों पात्र बम्बई में। मनोरमा के स्वभाव तथा विचारों का तालमेल सुतलीवाला से बहुत समय तक नहीं जमा, तो उसने तलाक दे दिया। उसने यहाँ भूषण को पा लिया। धर्नासिंह कानपुर में सिनेमा में सोमा को देखता है तो उसे खोजने बम्बई आता है। मनोरमा और भूषण के साथ उसके घर गया तो वहाँ उन पर गुण्डों ने हमला कर दिया। भूषण घायल होकर मर गया तथा धर्नासिंह पुलिस की हिरासत में ले लिया गया। सोमा उसे देखकर भी बचाने का प्रयत्न नहीं करती। सुतलीवाला उससे विवाह के लिये इच्छुक है तथा भूषण की मृत्यु से मनोरमा की हालत ख़राब हो जाती है।

इस तरह इस उपन्यास में मुख्य पात्र सोमा, धनसिंह, मनोरमा, सुतलीवाला आदि के विभिन्न रूप सामने आते हैं। ये रूप पूँजीवादी व्यवस्था के द्वारा विमा-विमानवीकरण की प्रक्रिया से बनते हैं। चित्रण के लिहाज़ से भगवतशरण उपाध्याय के शब्दों में, 'यह साधारणतः सुन्दर कृति है।'

'अमिता' यशपाल का दूसरा ऐतिहासिक उपन्यास है। प्राक्कथन में लेखक ने लिखा है—"दिव्या के कथानक की भाँति अमिता की कहानी भी इतिहास नहीं, कल्पना ही है। इतिहास की प्रमाणित घटना केवल अशोक का कलिंग विजय करने के लिये युद्ध करना और इस युद्ध के परिणाम में भविष्य में युद्ध न करने की प्रतिज्ञा कर लेना ही है। अपनी इस प्रतिज्ञा को अशोक ने शिला लेखों द्वारा चिरस्थायी कर दिया था। इस काल्पनिक कहानी का उतना ही अंश इतिहास है।" उपन्यास में अमिता एक अबोध बालिका है। उसका सहज-सरल व्यवहार पराक्रमी अशोक को युद्ध से विमुख कर देता है। दूसरा चरित्र दासी हिता का है। वह अमिता को पालती-पोषती और सीख देती है। वह अमिता के माध्यम से एक कुशल महिला के रूप में अपनी पहचान बनाती है। उसमें वात्सल्य के गुण हैं, इसीलिये उसमें अमिता को पालने की शक्ति है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस उपन्यास को लिखने के बारे में यशपाल का कहना है कि 'अमिता' लिखने से पूर्व मैंने यह जानने का प्रयत्न किया था कि प्रामाणिक इतिहास में अशोक के कलिंग विजय का कोई ब्योरा मिल सकता है या नहीं। इतिहास में इस बात का कोई उल्लेख नहीं है कि अशोक की कलिंग विजय के समय कलिंग में कौन राज्य कर रहा था। इतिहास के इस अभाव में मैंने अपनी कल्पनाओं को जमाया है।·····अमिता में सामाजिक समस्याओं को ही लिया गया है।" (यशपाल के पत्र—सं० मधुरेश, पृष्ठ 46-47)। यशपाल की उल्लेखनीय कृतियों में इसकी गिनती नहीं है।

'झूठा सच' उपन्यास के क्षेत्र में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कृति है। इसके दोनों भाग लेखक की सूझ-बूझ और श्रम से रचे गये हैं। यह विश्व साहित्य की कोटि में रखी जानेवाली कृति है। इसके दो भाग हैं, वतन और देश तथा देश का भविष्य। इसका कथ्य भारत की आज़ादी, विभाजन की त्रासदी, आज़ादी के बाद जन सेवा के नाम पर नेताओं द्वारा भ्रष्ट तरीकों का फैलाव, साम्प्रदायिक गतिविधियों का उकसाव तथा मध्यवर्गीय रोमानी मनोवृत्तियों की विसंगतियाँ हैं। कथा केन्द्र है—लाहौर और फिर दिल्ली। इसके ज़्यादातर पात्र निम्न मध्यवर्ग और उच्च मध्य-वर्ग के हैं। उच्चवर्ग तो अपनी स्थिति रखता ही है पर गतिविधियों का ताना-बाना तथाकथित बुद्धिजीवियों के परिवेश में दौड़ लगाता है। यही उपन्यास की सीमा भी है। बुद्धिजीवियों में एक वे हैं, जो जनता के साथ विश्वासघात करते हैं और वे भी जो जनसेवी हैं।

लाहौर की गली भोला पाँधे, जहाँ हिन्दू और मुसलमान वर्षों से पड़ोसी की

तरह प्रेम से रहते हैं। यहीं एक परिवार में जयदेव पुरी और उसकी बहन तारा है। आरम्भ में पुरी में देशभक्ति दिखती है, पर बाद में धन कमाने के लोभ तथा महत्त्वाकांक्षाओं के घेरे में फंस जाता है। इस रोग से ग्रस्त हो वह फिर औचित्य का कुछ भी ध्यान नहीं रखता। यहाँ तक कि बहन तारा के सोमराज जैसे आवारा से विवाह को वह रोकने में कोई मदद नहीं करता। अपने स्वार्थ पालन के लिये यथा अवसर वह बहन तक को बदनाम करता है। वह कनक से प्यार का नाटक कर माता-पिता की मर्ज़ी के ख़िलाफ़ शादी कर लेता है और फिर उसके जीवन को बर्बाद करके छोड़ देता है। उर्मिला की विपदाओं के लिये वही कारण बनता है। यह सब करते हुये वह सूद जैसे मक्कार कांग्रेसी नेता के चंगुल में है। पुरी प्रेस का मालिक और पत्रिका का सम्पादक बन जाता है। इस जगह वह अवसरवादी भूमिकाएँ अदा करता है। यह पत्रकारिता और तथाकथित देशभक्ति वास्तव में भारतीय राजनीति की एक मक्कार किन्तु ताकतवर प्रवृत्ति है, जिसे यशपाल बखूबी उकेरते हैं। '**झूठा सच**' में इस जगह जो अन्य पात्र दिखाई पड़ते हैं, वे हैं—सोमराज, मास्टर राम भुलाया के बड़े भाई, पुरी के ताऊराम ज्वाया, रतन, शीलो का पति, बधवामल, प्रसादजी, अवस्थीजी, मिसेज पन्त, कौशल्या देवी—इत्यादि। ये सभी लोग विभाजन की लूट, आज़ादी के बाद सुविधाओं की बटोर और कैम्पों में जवान लड़कियों के भोग में व्यस्त हैं। इनके लिये स्वार्थों की पूर्ति ही जीवन का सार है। लाहौर में बसनेवाले हिन्दू उखड़कर हिन्दुस्तान आते हैं तथा नये तरीके से बसने के लिये विपरीत स्थितियों से गुज़रते हैं। इन्हीं स्थितियों का लाभ उठाने वाले ये लोग हैं। इन्हीं के भीतर तारा और सोमराज की शादी होती है और फिर अलग हो जाते हैं। पुरी और कनक जुड़ते-टूटते हैं। कान्ता और नैयर तथा पं० गिरधारी लाल इसी नियति से बँधे हैं। इनमें रूढ़ियों और साम्प्रदायिक दंगों की मनोभावनाएँ भी काम करती हैं। इस भ्रष्ट दृश्य को यशपाल ने संजीदगी के साथ चित्रित किया है।

यशपाल के उपन्यास में अंधकार के साथ उजाला भी है। उन्होंने उन लोगों को खोज लिया है, जो इस भयानक संकट के समय आदमी को बचाने के लिये तत्पर हैं। अर्थशास्त्री डॉ० नाथ, डॉ० श्यामा, पत्रकार कनक तथा गिल, इंजीनियर नरोत्तम और नर्स मसी—जैसे लोग निरन्तर जनता की भलाई में लगे रहते हैं। चड्डा एक मार्क्सवादी और कम्युनिस्ट कार्यकर्त्ता है, जो स्थितियों की विद्रूपताओं से मुक्ति का रास्ता खोजता है। ये लोग भटकते लोगों के लिये शिविर खोलते हैं और उनकी जीवन-रक्षा में सहयोग देते हैं। वे इनके लिये चन्दा एकत्र करते हैं। यशपाल यहाँ भी भ्रष्ट तत्त्वों के द्वारा नाजायज़ लाभ उठाने की हरकतें देख लेते हैं। वह 'देश का भविष्य' खण्ड में सच्चे जनसेवकों के हाथों देश के भविष्य को सुरक्षित मानते हैं। विश्वास है कि यह झूठ अन्ततः जन सेवकों के साथ जंग में

धराशायी होगा । डॉ० नाथ तभी कहता है, "देश का भविष्य नेताओं और मंत्रियों की मुट्ठियों में नहीं, देश की जनता के हाथ में है ।" झूठा सच उपन्यास में यशपाल स्थितियों के मार्मिक कथन और चरित्र-सृजन में वेजोड़ रहे हैं। उन्होंने मानवीय कमज़ोरियों के साथ उसकी संघर्ष शक्ति को उभारा है । ई० चेलिशेव ने इस रचना पर अपनी राय दी है कि, "झूठा सच आधुनिक भारत के इतिहास के महत्त्वपूर्ण दशकों में से एक के भारतीय बुद्धिजीवियों के भाग्य एवं भारत के भविष्य के विचारों की यथार्थ तथा मार्मिक गाथा है ।"

(क्रांतिकारी यशपाल—सं० मधुरेश, पृष्ठ 125)

यशपाल ने 'झूठा सच' के बाद तीन छोटे-छोटे अन्य उपन्यास भी लिखे । तीनों की कथा में एक संगति है । यह संगति अनुभव की है । आर्य समाज में रहकर लेखक ने मनुष्य के चरित्र की यौन-मर्यादाओं की जकड़ वंदियों को देखा था । इसकी जकड़न उनके अनुभव में आई थी । ऊपर से ओढ़े संयम को भीतरी आवेश कैसे तोड़ते हैं—यह उनसे छिपा नहीं था । 'पतिव्रता का धर्म' क्या है, इसे यशपाल ने भारतीय समाज में नीति के ठेकेदारों से वार-वार सुना, धर्म की रूढ़ियों के जरिये स्त्रियों की प्रताड़नाएँ देखीं और जाना कि परतंत्र समाज में स्त्री की आज़ादी कितनी परतों के नीचे दवी है । उसके ऊपर तरह-तरह की गुलामियाँ हैं । स्त्री की मुक्ति के लिये लेखक ने उन्हें निडर और निर्लज्ज तक वनाया । पातिव्रत धर्म के खंडन के लिये उन्होंने रचना द्वारा परिवेश और साहस दिया—अतिरेक की हद तक । इसके लिये यशपाल पर आक्षेप लगे—पर उनका उत्तर यही रहा कि लोग समझ नहीं रहे हैं। **'बारह घण्टे'**, **'अप्सरा का श्राप'** और **'क्यों फँसे'** ये उपन्यास इस प्रसंग में यशपाल की अतिरिक्त आत्म विश्वासपूर्ण दृष्टि के वाचक है ।

'वारह घण्टे' में एक भारतीय नारी है, जिसका धर्म ईसाई है । स्त्री का नाम विनी है । उसका पति मर गया तो वह अनाथ हो गई । वाहरी संसार उसके लिये अछूत है । सामाजिक नियमों ने उसे संसार से विरक्त बना दिया । पति रोमी की स्मृति ही उसका जीवन है । ग्लानि के कारण आत्महत्या की बातें भी सोच चुकी है । एक वार पति की क़ब्र पर फूल चढ़ाने गई तो फैन्टम नामक व्यक्ति से भेंट हो गई । वह भी विधुर है । दोनों अपने दुःखों का आदान-प्रदान करते हैं । वर्षा के कारण वे एक ही रिक्शे में लौटते हैं और विनी घर लौटने के वजाय फैन्टम के साथ रेस्तरां में वैठती है और फिर उसके घर चली जाती है । वहाँ दोनों जीवन साथी वन जाते हैं । विनी की वहन जैनी इसे नापसन्द करती है, पर जैनी का पति पामर और पामर का दोस्त लारेंस—उसके कदम का स्वागत करते हैं । विनी और फैण्टम के भीतरी दर्द को समझकर मुक्ति का मनोवैज्ञानिक प्रयत्न उपन्यास का आधार है ।

इस कड़ी में **'अप्सरा का श्राप'** अभिज्ञान शाकुन्तल की कथा के सहारे लिखा

गया है। उपन्यास में नारी के व्यक्तित्व की खोज की गई है। दुष्यन्त शकुन्तला को भूल जाते हैं। शकुन्तला अपमानित होती है। मेनका कहती है कि वह दुष्यन्त से अपने को मुक्त कर ले। जिस पुरुष ने उसका अपमान किया है, उससे ही अनवरत रूप से जुड़े रहना कायरता है। शकुन्तला उसकी बात नहीं मानती। वह दुष्यन्त को पति रूप में अस्वीकार नहीं कर पाती। मेनका ने उसे श्राप दिया—परोपजीवी होने का। शकुन्तला की परम्परा में, तब से भारतीय नारी यह श्राप ढोती आ रही है। यही 'अप्सरा का श्राप' है। मेनका यहाँ लेखक के विचारों को वहन करती है। विचार है, "अनेक समाजों में पुरुष ने स्वार्थ के प्रमाद में नारी को अपने निरंकुश भोग की वस्तु बना लेने के लिये उसे अपनी पशु सम्पत्ति के समान स्वत्वहीन बना दिया है। पुरुष ने नारी को स्ववश में रखने के प्रयोजन से उसके नारीत्व और व्यक्तित्व को पातिव्रत की धारणाओं से बाँधकर उसे पत्नी मात्र बना लिया है। पति—पुरुष ने पति-पत्नी के सम्बन्ध में एक निष्ठा का धर्म केवल पत्नी पर आरोपित करके स्वयं स्वामी बन पत्नी को अधीन बना लिया है।" (अप्सरा का श्राप, पृष्ठ 107) उपन्यास में दुष्यन्त के चरित्र से तथाकथित धीरोदात्तता उतार दी गयी है। वह नारी की स्वतंत्रता का बाधक प्रचलित मनुष्य बन गया है। लेखक ने निवेदन में लिखा है, "क्या इस युग में पतिव्रत के नाम पर शकुन्तला की भाँति नारी के दमन के लिये उत्तरदायी व्यक्ति को अलौकिक शक्तियों के विश्वास से धीरोदात्त तथा निर्दोष माना जा सकेगा।" (वही, पृष्ठ 131)।

'क्यों फँसे' उपन्यास की कहानी कमोबेश इसी तरह की सार वस्तु पर केन्द्रित है। यशपाल रति कर्म को मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति मानते हैं, इसलिये कि वह अदमनीय है। इस उपन्यास में प्रमुख पात्र हैं, भास्कर, मोती, हेना और मिस डॉक्टर। भास्कर युवक है—वह विवाह के बंधन और गृहस्थी के प्रति रुचि नहीं दर्शाता। उसकी कोई इच्छा, अगर है तो सुन्दर युवती से संगति की। मोती युवती है। वह अपने दाम्पत्य से सुखी नहीं है। वह भास्कर के क़रीब आती है लेकिन दोनों यौन सुख की कामना को पूरा नहीं कर पाते। भास्कर को मोती की स्त्रियोचित लज्जा और झिझक पसन्द नहीं है। भास्कर एक दूसरी युवती हेना के सम्पर्क में आता है, जो लगभग कॉल गर्ल है। उन्मुक्त यौनाचार में प्रवीण हेना से भास्कर तृप्त होता है। मोती इसे 'खुद पसर जानेवाली बेहया' कहती है और खुद का भी ईर्ष्यावश भास्कर के सामने पूर्ण समर्पण करती है। भास्कर फिर उसे छोड़ देता है। वह उससे घृणा करने लगता है और सम्बन्ध विच्छेद कर लेता है। भास्कर के साथ एक तीसरी युवती भी जुड़ती है—मिस डॉक्टर, पर वह पूर्ण समर्पण के पूर्व विवाह का प्रस्ताव करती है, इसलिये भास्कर उससे भी अलग हो जाता है। ये तीनों उदाहरण यशपाल की इस धारणा के लिये हैं कि प्रेम के प्रसंग में नैतिकता, स्वामित्व का दावा और एकाधिकार की इच्छाएँ निरर्थक हैं। इस उपन्यास के अन्त में

भास्कर के वहाने लेखकीय निष्कर्ष है, "नारी को सदा सम्पत्ति या अपनी तफ़रीह का सौदा ही समझना नारी के प्रति पुरुष का हीन विचार, मिथ्या अहंकार और अन्याय नहीं तो क्या है ? आत्मविश्वासी, आत्मनिर्भर नर—नारी क्यों फँसाये ! क्यों फँसे ?" (पृष्ठ 115)

यशपाल का अंतिम उपन्यास **'मेरी तेरी उसकी बात'** काफ़ी चर्चित हुआ है तथा साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत भी। आकार की दृष्टि से 761 पृष्ठों में यह उपन्यास लगभग 'झूठा सच' के आसपास है। पूर्व उपन्यासों की भाँति इस उपन्यास की भी कथावस्तु या तो राजनीतिक है या स्त्री-पुरुष सम्बन्ध। जहाँ तक राजनीति का प्रश्न है—1942 की घटनायें यहाँ फिर आई हैं—नये संदर्भ में। उस काल का पुनर्मूल्यांकन किया है—यशपाल ने। उन्होंने आज़ादी के बाद राजनीति के तमाम काले चरित्र में से उजली रेखाएँ खोजने का प्रयास किया है। उपन्यास का आकार बड़ा है और कथा इसमें धीरे-धीरे चलती है। शायद इसका कारण खुद आज़ादी के बाद के इतिहास में है। प्रमुख पात्र—सेठ अमरनाथ और उषा हैं, जो पहले क़रीब आते हैं और फिर दूर जाते हैं। अमर जेल जाते हैं और उषा छात्र नेता है। वह अद्‌भुत रोमानियत से भरी हुई है। अपने भाषणों से लोगों को उत्तेजित करती है। बम्बई में उषा और पाठक साथ साथ रहते हैं—छद्‌मवेष में। इस रहने में—राजनीति है और रोमान भी। बलिया के इलाकों के पुलिस थानों और कचहरियों पर कब्ज़ा करने विषयक विवरण बहुत हैं। सेठ, उषा, पाठक, नरेन्द्र, रज़ा और कई अन्य लोग राजनीतिक प्रकरणों पर खूब बहसें करते हैं। ये बहसें काफ़ी लम्बी हैं। बिरजू की शहादत का प्रसंग बहुत प्रभावोत्पादक है। लेखक दृश्य में मौजूद साम्प्रदायिक लड़ाइयों को सद्‌भाव में बदलना चाहता है। इसीलिये प्रभावी वक्तव्य उपस्थित करता है। उपन्यास में शुजा अहमद की ज़ोखिम भरी कहानी का यही प्रयोजन है। उषा भूमिगत होकर यही काम करती है। लेखक सारी समस्याओं को अलग-अलग उठाता है, उनको एक-एक कोने में रखकर परखता है, फिर उन्हें एक हलचल में बदलने का शिथिल प्रयास करता है। जब हम देखते हैं कि रज़ा, नरेन्द्र ओर पाठक के क्रान्तिवादी विचारों का असर है—और हरि भैया, माया गोरी, गंगा बुआ, पंडित परिवारी अपने परिवेश के साथ राजनीतिक गतिविधियों में हिस्सा लेते हैं, तब हम पाते हैं कि सारा माहौल उबलने-बदलने के लिये कुलबुला रहा है। यहाँ व्यक्तिगत चरित्र परिवार, समाज और राष्ट्रीय परिस्थितियों से घुलता चला जाता है। प्रेम की निजी इच्छाओं तथा समाज की मुक्ति की कोशिशों में कोई बुनियादी फ़र्क़ नहीं रह जाता। प्रेम की इच्छाएँ मनुष्य को समाज से काटती नहीं। इन इच्छाओं का रचनात्मक महत्त्व होता है। ये व्यापक संदर्भ में अपने आपको खोलने तथा हीनता की ग्रंथि से मुक्त होकर व्यापक आयाम में शामिल होने के लिये हैं। यशपाल की ये इच्छाएँ राजनीतिक गतिविधियों तक बँधी हैं। उषा

और पाठक के चरित्र में यही है। अमरनाथ के मन में और वातें रहती हैं तो वह हीनता बोध के साथ त्रासदी का कारण वना है। इस उपन्यास की केन्द्रीय समस्या के रूप में मात्र स्त्री-पुरुष के सम्वन्धों को देखना ग़लत है। धनंजय वर्मा ठीक कहते हैं कि "जो लोग समझते हैं कि 'मेरी तेरी उसकी वात' की केन्द्रीय समस्या, स्त्री-पुरुष सम्वन्धों की है और उसका केन्द्रीय विषय स्त्री-पुरुप के सम्वन्धों के उन रूपों को स्पष्ट करता है, जिन्हें लेखक जीर्ण रूढ़ियाँ मानता है और उन रूपों की ओर संकेत करता है, जिन्हें यह स्वस्थ समझता है, उन्हें किसी रचना को ऐसे सपाट ढंग से पढ़ने और उसे इतने भद्दे ढंग से सरलीकृत करने की आदत छोड़नी चाहिये।"

(**क्रांतिकारी यशपाल**, सं० मधुरेश, पृष्ठ 145)

उपन्यास के अन्त में, उषा अपनी क्रान्तिकारी गतिविधियों में काम करते हुए पाठक से होनेवाली अपनी दूसरी शादी को स्थगित कर देती है। उसकी गोद में पहले से पुत्र है—पप्पू। उसमें ही नभावना भर गई है कि माँ उसका वाप वदल रही है। यह वात उषा को लग जाती है। वह भावुक हो उठती है और तय करती है कि पहले वेटे के मन को मोड़ना है। आलोचकों ने इसे पलायन कहा तो यशपाल का उत्तर है, "उस पर सवसे पहला दायित्व अपने वेटे के संस्कारों को मोड़ने का है, इसी स्थिति का व्यवहारिक रूप है। वेटे के प्रति दायित्व और पाठक से सान्निध्य की आवश्यकताओं में समन्वय की ज़रूरत उसके लिये स्पष्ट कर देती है कि उषा और पाठक का सान्निध्य या सम्वन्ध उनका प्राकृतिक अधिकार है।"

(**यशपाल के पत्र**, सं० मधुरेश, पृष्ठ 110)

इस तरह का कथान्त यशपाल के विकसित विचारों का प्रतीक है। ज़ाहिर है कि यहाँ उनमें 1940 के से विचार नहीं हैं।

यात्रा-साहित्य

यात्रा और आदिम साम्यवादी व्यवस्था में गहरा सम्बन्ध है। मस्तिष्क विकास के पूर्व भी मनुष्य के पूर्वज यात्री थे। यात्राओं के कारण उनके और प्रकृति के बीच सम्बन्ध जन्मे। इच्छाओं, चेष्टाओं एवं क्षमताओं का सिलसिला प्रकृति-सहचरण से सम्भव हुआ। वनमानुप से मनुष्य में रूपांतरण यात्राओं ने किया। बाद में बर्बर मानव समाज जन्मा। सम्पत्ति के व्यक्तिगत अधिकार आये, वर्ग भेद पैदा हुआ और इस तरह आदमी को सभी प्रकार की संकीर्णताओं ने जकड़ लिया। खुली दुनिया से संकीर्ण दुनिया तक आने और फिर उससे निकलकर पुनः साम्यवादी रचना के उतरने में इतिहास ने कई करवटें ली हैं। वास्तविकता की रक्षा के लिये जगत का सम्पर्क अनिवार्य है और सम्पर्क के लिये यात्राएँ। यात्राओं के बिना प्रत्यक्ष बोध के बिलकुल प्रामाणिक हो पाने में संदेह की काफ़ी संभावनायें होती हैं।

जनवादी रचनाकार का मूलाधार आज प्रामाणिक अनुभव हो गया है, इसलिये यात्राएँ भी आवश्यक हैं। संसार के अधिकांश महान रचनाकार यात्री थे। राहुल ने इसी बात को प्रमाणित करने के लिये 'अथातो घुमक्कड़ जिज्ञासा' लिखा।

उन्होंने कहा भी कि "दुनिया में मनुष्य जन्म एक ही बार होता है ओर जवानी भी केवल एक ही बार आती है। साहसी और मनस्वी तरुण-तरुणियों को इस अवसर से हाथ नहीं धोना चाहिये। कमर बाँध लो भावी घुमक्कड़ो ! संसार तुम्हारे स्वागत के लिए बेक़रार है। (घुमक्कड़ शास्त्र, पृष्ठ 11)

जहाँ तक यशपाल की यात्राओं का प्रश्न है, उन्होंने तीन बार यूरोप की यात्रा की। एक बार मॉरीशस भी गये। देश के भीतर का कोई कोना उन्होंने अनदेखा नहीं छोड़ा। लगता है कि जैसे यह उनकी हॉबी थी। अपने को व्यापक बनाने के लिये वे घर और बाहर यात्रा में लीन रहे।

यशपाल ने इंग्लैण्ड, स्विट्ज़रलैण्ड, रूस, इटली, चेकोस्लोवाकिया, रूमानिया, पूर्वी-पश्चिमी ज़र्मनी और अफ़गानिस्तान की यात्राएँ कीं। इन यात्राओं का विवरण 'लोहे की दीवार के दोनों ओर' 'राहबीती', 'बीवी जी कहती हैं, मेरा चेहरा रोबीला है', में है। मॉरीशस की यात्रा की चर्चा 'स्वर्गोद्यान बिना साँप' में है। देश की यात्राओं का भी कथ्य बीच-बीच में इन पुस्तकों में है। 'देखा सोचा समझा' में विशेष रूप से सेवाग्राम. शिमला से कुल्लू, नैनीताल के यात्रानुभव हैं। इन यात्राओं से दुनिया के दोनों प्रकार के देशों और जनजीवन की संरचना का बोध होता है।

एक ओर इंग्लैण्ड, स्विट्ज़रलैण्ड, इटली, पश्चिमी ज़र्मनी, अफ़गानिस्तान, मॉरीशस हैं, जहाँ या तो सम्पन्न पूंजीवादी व्यवस्था है या तीसरी दुनिया की उभरती हुई समस्याएँ और रूढ़िग्रस्त मानसिकता है। यशपाल ने इंग्लैण्ड की यात्रा के दौरान देखा कि वहाँ की व्यवस्था में व्यावसायिक मनोवृत्ति प्रधान है। आदमी भी क्रय-विक्रय के साधन के अलावा कुछ नहीं। सारा देश विज्ञापनों में व्यस्त होता है, माल विक्री की दृष्टि से। उपभोक्ताओं की रुचि को देखकर नहीं। पूंजीवादी संस्कृति की विकृति का एक छोर वेश्यावृत्ति का खुला नृत्य और दूसरा छोर भिक्षा-वृत्ति वहाँ मौजूद है। स्विट्ज़रलैण्ड दुनिया का विकसित और स्वास्थ्यवर्द्धक देश माना जाता है। दिखायी यह पड़ा कि वहाँ की भी सम्पन्नता और आज़ादी का महत्त्वपूर्ण अंग बड़े लोगों का क्लबी जीवन और उन्मुक्त भोग है। हमारे देश में घूसखोरी, भ्रष्टाचार, दग़ाबाजी और शोषण की मनोवृत्ति देखकर संस्कृति के वूर्ज्वा पहरुये कहते हैं कि यह अविकसित होने के कारण है। यशपाल ने सम्पन्नता के इन देशों का जो दास्तान दिया, उससे भ्रम भंग हो जाना चाहिये। भ्रमित मध्य वर्ग और आम जनता की जानकारी के लिये यह सूचना काफ़ी है कि ये दोष सामन्ती पूंजीवादी संस्कृति के हैं। असमानता की खाई और शोषण के कारण ये विकृतियाँ होती हैं। वही समाज ऐसी विकृतियाँ पैदा करता है और उनके ही समाधान का कृत्रिम प्रचार करते जनता का ध्यान बँटाता है। यशपाल ने अनुभव के आधार पर लिखा है कि इटली, फ्रांस, मिश्र और अदन में चीज़ों की कीमत दुगनी बतायी जाती है। बख़्शीश के नाम पर कर्मचारी घूस माँगता है। पासपोर्ट निरीक्षक कर्मचारी को बख़्शीश न दी जाय तो चेहरे और पासपोर्ट की फ़ोटो को बेमेल कह देता है। इन देशों में आम आदमी और विशिष्ट आदमी का अन्तर दिखता है। रोम, लन्दन आदि नगरों की यात्रा के बीच ईसाइयों के चरित्र दिखे। कोई धर्म निराश ग़रीबों को पारलौकिक आशा प्रदान करने के लिये जन्मता है। ईसाई धर्म का जन्म इसी तरह हुआ। बाद में शासन ने उसे अपना औज़ार बनाया तो रोम ही नहीं, पश्चिमी देशों के लिये वह साम्राज्यवादी विस्तार और व्यापार वृद्धि में सहायक बना। निरीहता, शांति और जनसेवा के आधार पर टिकी इस संस्कृति ने इस्लाम से कम मानव हत्याएँ नहीं कीं। बौद्ध धर्म, जैन धर्म, हिन्दू धर्मों के साथ भी यही हुआ।

पाकिस्तान और अफ़गानिस्तान में प्रायः अधिक आबादी मुसलमानों की है। पाकिस्तान का जन्म चन्द साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के राजनेताओं के कारण हुआ था। जब से वह देश बना, पूरे प्रचार साधनों का उपयोग कर शासन व्यवस्था ने पड़ोसी जनता के प्रति नफ़रत का भाव पैदा किया। स्वतन्त्रता संग्राम के समय हिन्दू और मुसलमान साथ-साथ अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ जूझते थे, परन्तु वहाँ की तरुण पीढ़ी को जो इतिहास पढ़ाया जाता है, उसका मूलाधार साम्प्रदायिक नफ़रत है। यही कारण है कि काफ़ी दिन तक जंग वहाँ के शासन का स्थायी भाव बन गया

था। इसी के ज़रिये वे सिंहासन की रक्षा करते थे और ग़रीबी से पीड़ित जनता का ध्यान बँटाते थे। यशपाल ने पेशावर से काबुल की सड़क यात्रा करते जन-धारणाओं को समझा। पुलिस कर्मचारियों ने कठिनाई से सीमा लाँघने की अनुमति दी। अफ़गानिस्तान में पहुँचते ही देखा कि सड़क पानी, बिजली की अव्यवस्था है। धार्मिक रूढ़ियाँ ज्यों की त्यों हैं। पुलिस कर्मचारियों का व्यवहार अंग्रेज़ी ज़माने का है। गाँवों का पिछड़ापन, ग़रीबी, बेरोज़गारी भारत से भिन्न नहीं। यहाँ के निवासी हिन्दू, सिक्ख, मुसलमान आदि हैं। साम्प्रदायिक दंगे होते नहीं, पर आतंक है। पर्दों का चलन शेष है। काबुल जैसे नगर भी गंदे हैं और बेगार की प्रथा को जीवित रख रहे हैं। शासन और सामाजिक रूढ़ियों के पक्षधरों के प्रति जन-असन्तोष है किन्तु वह सुनियोजित नहीं। अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव की दृष्टि से अंग्रेज़ों की नकल अधिक है, इसलिये जन-असन्तोष का वैज्ञानिक नियोजन ज़रूरी जान पड़ा।

समाजवादी देशों की यात्रा से दो प्रकार की बातें स्पष्ट हुईं। अवशेषों से उनकी प्राचीन संस्कृति और नवीन वाम संस्कृति की उपलब्धियों की तुलना यात्रियों के लिये आसान है। पूर्वी ज़र्मनी और पश्चिमी ज़र्मनी की एक साथ यात्रा से पूंजीवादी साम्यवादी देशों की स्थितियों की सटीक तुलना हो जाती है। यशपाल पहली यूरोप यात्रा के समय रूस भी गए थे। इसी यात्रा के समय चेकोस्लोवाकिया, रूमानिया और पूर्वी ज़र्मनी का परिचय मिला। सभी समाजवादी देशों में क्रांति का तरीका एक तरह नहीं रहा। जैसे—रूस में सर्वहारा ने क्रांति की चेकोस्लोवाकिया में दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान रूस ने सहायक बनकर नाज़ियों को खदेड़ा और संवैधानिक ढंग से समाजवादी व्यवस्था आई आदि। इसी कारण बाद की व्यवस्था में मार्क्स-लेनिन के सिद्धान्तों को अपनाते हुए किंचित् प्रायोगिक अन्तर बना हुआ है। समाजवादी देशों में किसी व्यक्ति का शासन तो है नहीं, इसलिये पूरी व्यवस्था जनहित के लिये जवाबदेह है। उत्पादन से बिक्री तक वस्तुओं को उपभोक्ता की रुचि की संगति प्राप्त है। दुनिया के देशों से नफ़रत वहाँ नहीं है। पूंजीवादी देशों की जनता के प्रति भी नहीं। जनता जानती है कि इन देशों में जनता के बजाय पूंजीपतियों के हाथ में राजनीति की बागडोर है, इसलिये वे ही वर्ग चरित्र की रक्षा हेतु जनतंत्र का सही चित्र नहीं आने देते। उन देशों में साम्यवाद को विकृत करने में पानी की तरह पैसा बहाया जाता है। किसी देश में साम्यवाद पहुँचे, इसके पूर्व वे उसके प्रति विरोध भेज देते हैं। सच्चा भाईचारा, मित्रता और प्यार कहीं यदि है तो समाजवादी देशों में।

इन देशों में महलों और बड़े भवनों के बजाय ऐसे मकान बनवाये गये हैं, जिनमें अधिक से अधिक जनता सामान्य सुविधाएँ पा सके। आवश्यकता के अनुसार कम स्थान या अधिक स्थान के मकान उपलब्ध होते हैं। कठिन श्रम में लगा मज़दूर

किरानी बाबू से अधिक वेतन पाता है। देश की आय के अनुरूप प्रत्येक देश में वेतन तय होता है। चेकोस्लोवाकिया में कम से कम वेतन 700 क्राउन है। पूर्वी ज़र्मनी और रूस में जीवन स्तर काफ़ी विकसित हो गया है। यूरोप के समाजवादी देशों में पुराने अवशेषों को सुरक्षित रखा गया है। नाज़ी युग के हथियार आज भी उस युग की भयावहता की याद दिलाते हैं। नागरिक किसी देश में बूज़र्वा आक्रमण और नृशंस हत्याओं के समाचार सुनकर दहल जाते हैं। उनकी पीड़ा देश की सीमाओं में नहीं, माननीय संदर्भों से जुड़ी है। रूसी भाषा का अध्ययन करते हुए सभी समाजवादी देश वाम-संस्कृति में सहभागिता का अनुभव करते हैं। यह भाषा उनके लिये सांझी भाषा है। इन देशों में दूकानों, पार्कों तथा अन्य स्थानों के नाम व्यक्तिवाची नहीं हैं। व्यक्तिवाची नाम यदि हैं तो वे उस समय के हैं, जब पूँजीवादी-व्यक्तिवादी सभ्यता थी। इस समय उनका नाम चीज़ों, स्थानों, विशिष्टताओं और बिक्री की वस्तुओं के नाम पर है। लेनिन-मार्क्स के नाम पर यदि कोई सार्वजनिक स्थान है, तो यह व्यक्ति-पूजा नहीं है। ये नाम उनके लिये दिलों की धड़कन के समान हैं। अधिकांशत: ये स्थान सरकारी हैं। सरकारी का अर्थ प्रत्येक व्यक्ति की हक़दारी है। रूस में सहकारी खेती है। चेक में कहीं-कहीं व्यक्तिगत खेती है, यूगोस्लोवाकिया में व्यक्तिगत स्वामित्व पूरी तरह नष्ट नहीं किया गया। यूगोस्लाव लेखक आंतोन ने कहा, वहाँ किसानों को स्वतन्त्र व्यक्तिगत अधिकार देने के कारण रूस से उनकी असहमति थी। यूगोस्लोवाकिया ने अपनी परिस्थिति के अनुसार राष्ट्रीयकरण किया है। इसका अभिप्राय मार्क्सवाद से हटना नहीं है। इन देशों ने प्राथमिकता की दृष्टि से ग़रीबी से मुक्ति पायी। संविधान में हर नागरिक को काम करने का अधिकार दिया। सम्पत्ति की असमानता समाप्त की गयी। सर्वहारा के गले से राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक फंदे कट गये और वह अपनी प्रगति के वास्तविक समान अवसर पा सका। यह मानवीय मुक्ति का पूर्ण प्रयास बन सका। आदमी अपनी, अपने निज जनों के भविष्य की चिन्ताओं में संलग्न रहने के बजाय राष्ट्रीय मानवीय चिन्ताओं में आसन्न होता है। कोई रूसी राष्ट्रीय-मानवीय चिन्ता में उससे अधिक परेशान होता है, जितना हमारे देश का मनुष्य व्यक्तिगत चिन्ताओं में डूबा होता है। रूस की जनता के दिलों में नाज़ी अत्याचार, हथियारों की क्रूरताएँ गहरी पीड़ा जगाती हैं, यही कारण है कि मुक्ति-योद्धा लेनिन उनके लिये श्रद्धेय हैं। स्टालिन के सम्बन्ध में कहीं-कहीं भिन्न धारणाएँ हैं। चेकोस्लोवाकिया में एक पर्वत चोटी का नाम स्टालिन शिखर है। यहाँ के लोगों की धारणा है कि वह नेता साम्यवादी व्यवस्था के लिये शिखर से कम नहीं।

समाजवादी देशों में वाम-संस्कृति जनता के लिये आन्तरिक, स्वत: स्फूर्त और स्वाभाविक हो गयी है। पूंजीवादी व्यवस्था इस संस्कृति को जिन तरीक़ों से

बदनाम करती है उनके उत्तर वहाँ की यात्राओं में ही मिल सकते हैं। जिन्हें विश्वास की प्रामाणिकता की ज़रूरत हो, वे इन देशों में जायें। ऐसा कहा जाता है कि इन देशों में जनता को अभिव्यक्ति की आज़ादी नहीं है। लोगों को लाउड-स्पीकर बनकर जीना पड़ता है। धर्म के बारे में भी भ्रम फैलाया जाता है। यशपाल ने इन प्रश्नों के उत्तरों को यात्रावृत्त के जरिये जीवित कर दिया है। उन्होंने चेक, पूर्वी ज़र्मनी, रूस और रूमानिया की जनता के संवाद उद्धृत किये हैं, जिनसे वहाँ के लोगों का जीवन चरित्र पहचान में आता है।

आम स्वतन्त्रता अथवा लेखकीय स्वतन्त्रता के बारे में चेकोस्लोवाकिया की 'लेखकों की कांग्रेस में' पारित प्रस्तावों से जानकारी मिलती है। प्रस्तावांश है, "मनुष्य के पूर्ण विकास और मुक्ति के लिये संघर्ष करना ही सार्थकता है। जब लेखक अपनी कला दिखाता है और नये आदर्श सामने रखता है तो उस पर आदर्श-हीन और भौतिकवादी होने का लांछन लगाया जाता है। आज के लेखक की जड़ें वास्तविकता में हैं, इसलिये वह भौतिकवादी तो है ही परन्तु वह आदर्शहीन भी नहीं है। उसके आदर्श अधिक यथार्थ हैं। आज का लेखक जब अपनी कला द्वारा नये आदर्शों का समर्थन करता हैं तो उस पर प्रचारक होने का लांछन लगाया जाता है। लेखक सदा ही अपनी कला से किसी विचार या आदर्श के प्रति सहानुभूति या विरोध पैदा करता है। साहित्य विचार पूर्ण होगा। हमारा विश्वास है कि विचार-हीन साहित्य की सृष्टि करने की अपेक्षा प्रचार का लांछन स्वीकार कर लेना ही बेहतर है।" (**राह बीती**, पृष्ठ 29) ज़ाहिर है कि समाजवादी देशों में हवा में तलवार घुमाने की मंजूरी नहीं है। लेखक हो या नागरिक उसकी प्रत्येक गतिविधि आदर्शों को रचने और रक्षा करने की होती है। कलाकार कला के साधनों की उपेक्षा नहीं करता। वह निरन्तर रचनात्मक स्वतन्त्रता की माँग करता है। इन देशों के लेखक आर्थिक दृष्टि से मुँहताज नहीं होते। उनके प्रकाशन संघ हैं और इस तरह वे आत्मनिर्भर हैं। क्या कोई यह बतायेगा कि आत्मनिर्भरता से अलग अभिव्यक्ति की आज़ादी का कोई अर्थ है? इन देशों में ईमानदारी के साथ दुनिया की दूसरी संस्कृति में निहित मानवीय उपलब्धियों की पहचान की कशमकश है। वहाँ के विश्वविद्यालयों में दूसरी भाषाओं के अध्ययन की व्यवस्था है। भाषा सीखने का लक्ष्य उस संस्कृति को पहचानना है। वे अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्वपूर्ण लेखकों की रचनाओं का अनुवाद करते हैं। रूस, चेक तथा पूर्वी ज़र्मनी में तुलसी, रवीन्द्र, प्रेमचन्द, (एवं स्वयं यशपाल)जैसे लेखकों के अनुवाद हुए हैं। नयी कहानी, उपन्यास कविताओं के अनूदित संकलन छपे हैं, पत्रिकाएँ पढ़ी जाती हैं। यही कारण है कि किसी भाषा का मेहमान उन देशों में भी पढ़ने के लिये अपना साहित्य प्राप्त कर सकता है तथा भाषा की बाधा उसे यात्रा में नहीं सता सकती। अंग्रेज़ी के उप-निवेशवादी स्वामित्व को दूर करने के लिये इन देशों ने कारगर उपाय किये हैं।

चेक में डॉ० स्मेकल, रूस में डॉ० चेलीशेव तथा पूर्वी ज़र्मनी में डॉ० नेस्पिटाल जैसे साधक लेखक हैं, जो पूर्वी देशों के भाषा विभाग में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं। यशपाल को चेक देश में मिलाना हिब्शमानोवा अथवा मेरिया ने द्विभाषिया का काम कर पूरे देश की यात्रा करा दी थी।

जहाँ तक धर्म की आज़ादी का प्रश्न है, यशपाल ने लिखा है कि चेकोस्लोवाकिया में ईसा की माता मरियम की मूर्तियों के चौतरे काफ़ी संख्या में हैं। उनमें रोज़ पूजा होती है। कहीं-कहीं उनमें कम्युनिस्टों का चिह्न हँसिया एवं हथौड़ा बना है। मई दिवस ज़िन्दाबाद लिखा है। इस देश में प्राचीन रोमन कैथालिक या ईसाईयत के सनातन धर्म की परंपरा चली आ रही है। यहाँ के लोगों ने धर्म और कम्युनिज़्म को साथ-साथ सुरक्षित रखा है। रूमानिया में गिर्जाघर सुरक्षित हैं। शासन उन्हें अनुदान देता है। आश्चर्य है कि इस देश में पादरियों और धर्मोपदेशकों की साम्प्रदायिक शिक्षा के लिये एक विश्वविद्यालय है, जिसके अन्तर्गत छः कॉलेज हैं। वहाँ के मंत्री ने इस सम्बन्ध में उत्तर दिया था, "ये साम्प्रदायिक विश्वास एक विशेष प्रकार की आर्थिक जीवन-प्रणाली से पोषित हुए हैं। पहला काम है, उस प्रणाली को बदलना। जनता को वैज्ञानिक ढंग से सोचने की शिक्षा दी जानी चाहिये, परन्तु उनके मन पर चोट पहुँचाने से कोई लाभ नहीं।" (**राह बीती**, पृष्ठ 148) इन देशों में ही नहीं, अभी हाल में रूस में विश्व धर्म सम्मेलन हुआ था। स्पष्ट है कि धर्म द्वारा मानवीय रिश्तों में से साम्प्रदायिक दुर्भावना को निकालने की चेष्टा यहाँ की जाती है।

समाजवादी देशों में वाम संस्कृति के निर्माण के लिये मनोवैज्ञानिक तरीक़े से काम किया जाता है। यह जनसंचार साधनों का जनवादीकरण है। पाठशालाओं में क्रियात्मक शिक्षा दी जाती है। सामूहिक जीवन बिताने का अभ्यास डाला जाता है। रंगशालाएँ और मनोरंजन के साधन सोद्देश्य हैं। अराजक मनोवृत्ति से मुक्ति पाने की चेष्टा वहाँ की शिक्षा कर रही है। प्राकृतिक स्थलों को जन सुविधा से जोड़ा गया है। जहाँ सम्भव हुआ तो वहाँ स्वास्थ्य केन्द्र बना दिये गये है। सार्वजनिक स्थलों में आने-जाने की अनिवार्य व्यवस्था है। यशपाल ने रूस, चेक तथा पूर्वी ज़र्मनी की यात्रा मनोयोग से की है, इसी कारण वे वहाँ की सामाजिक-सांस्कृतिक स्थितियों को नज़दीक से देख सके हैं। अक्तूबर क्रान्ति का प्रभाव, पहली मई के प्रति आस्था जनता की संस्कृति का अंग बन गया है।

समाजवादी देशों के स्वास्थ्य गृह और विश्राम केन्द्र पूँजीवादी देशों की भाँति कुछ लोगों के लिये नहीं, सभी के लिये सुलभ हैं। दस माह के श्रम के बाद दो माह का अनिवार्य अवकाश लोग यहीं बिताते हैं। मास्को में 'सोची' स्वास्थ्य गृह है, जहाँ यशपाल और उनकी पत्नी स्वास्थ्य लाभ के लिये गयी थीं। इन गृहों में मनोरंजन, आकर्षण तथा रोग मुक्ति का लाभ मिलता है। यह सुन्दर बस्तियों का

निकाय संकुल है, जिसमें 52 स्वास्थ्य केन्द्र, 300 होटल, आवास और पर्यटन स्थलों का समूह है। यहाँ मेहनतकश लोग तथा विदेशी पर्यटक विश्राम हेतु आते हैं। जनता की सत्ता के सार्वजनिक स्थलों का इससे अच्छा नमूना शायद कहीं हो। रूस में लेनिन की समाधि दर्शनीय है। वहाँ की जनता के लिये अध्ययन, मनन और आत्मालोचन जैसे स्वभाव की चीज़ें हैं। शासन की रचनात्मक आलोचना करने का उन्हें हक़ है। स्थान-स्थान पर पुस्तकालय है। अच्छी पुस्तकों के अनन्त पाठक हैं। विदेशी लेखकों की पुस्तकें अनुवाद के द्वारा अथवा उसी भाषा को सीखकर पढ़ी जाती हैं। एक संग्रहालय है, जहाँ दुनिया के लोगों द्वारा सोवियत जनता को दिये गये उपहार हैं। भारत की ओर से कानपुर की ट्रेड यूनियन द्वारा प्रदत्त लाल झंडा और चावल के दानों से बनी लेनिन की रेखाकृति है। वहाँ के लोगों में मानवीय आवश्यकता का एहसास है। एक बार यह हुआ कि शिष्ट मंडल के एक साथी के सिर पर टोपी नहीं दिखी। ठण्ड बहुत थी तो एक महिला बिना बताये उनकी जेब में कुछ रूबल छोड़ गयी ताकि वह टोपी खरीद सकें। लेखक ने उन भारतीयों पर व्यंग्य किया है, जो वहाँ जाकर अपनी स्वार्थपरता के कारण छाप नहीं छोड़ पाते। विजयलक्ष्मी पण्डित ने सोवियत व्यवस्था के प्रति आस्था न होने के कारण राजदूत पद पर रहते हुए स्विट्ज़रलैण्ड से महँगा फ़र्नीचर मँगवाया था; जो उस देश में ही बहुत सस्ते मिल सकता था।

पूर्वी ज़र्मनी और पश्चिमी ज़र्मनी की कृत्रिम सीमा दोनों को अलग करती है। एक ओर शासन की पूँजीवादी व्यवस्था है, दूसरी ओर जनवादी। बलिन नगर दोनों देशों में बँटा है। आज्ञापत्र लेकर कार द्वारा इधर-उधर आया-जाया जाता है। पूर्वी भाग को नाज़ियों ने ध्वस्त कर दिया था, जिसके अवशेष अभी भी हैं। पश्चिमी ज़र्मनी में पूँजीवाद की रक्षा के लिये अमरीका अरबों डालर व्यय कर रहा है। कम्युनिज़्म को रोकने के लिये इनका यही विकल्प है। प्रायः पश्चिमी भाग में बड़े ज़मींदार, कारखानों के मालिक और पूँजीपति चले गये थे। पूर्वी भाग में मज़दूर, कलाकार और लेखक रह गये थे। बाद में पूर्वी ज़र्मनी सरकार ने थोड़े समय में ही मेहनतकश जनता के सहयोग से बहुउद्देश्यीय तरक्की की है, जो पश्चिमी ज़र्मनी के लिये ईर्ष्या की वस्तु है। पूर्व और पश्चिम में चलनेवाला सिक्का मार्क है लेकिन दोनों की बनावट अलग है। पश्चिम के पूँजीपति पूर्वी मार्क की साख गिराने की कोशिश करते हैं। पश्चिमी बैंक में एक पौंड के बदले बारह पश्चिमी मार्क मिलते हैं।

वहाँ की दूकानें बारह पश्चिमी मार्क के बदले अड़तालीस पूर्वी मार्क देती हैं जब कि सरकारी तौर पर एक पौण्ड में छः पूर्वी मार्क मिलते हैं। इस तरह पश्चिम से पूर्वी मार्क लेकर फिर पूर्वी भाग में आकर क्रय करने से काफ़ी लाभ होता है। इसमें पूर्वी जर्मनी में चीज़ों की कमी पड़ जाती है। ये हरकतें पूँजीवादी व्यवस्था

का षड्यन्त्र है। शिक्षा का स्तर, चीज़ों की कीमत, विकास के अवसर, मानवीय आचार, रहन-सहन, खेल-कूद आदि में दोनों संस्कृतियाँ तुलना के लिये पुकारती हैं। पूर्वी ज़र्मनी की प्रगति को देखते हुए देश की जासूसी के लिये अमरीकी चाल से पश्चिमी जर्मनी के रड्डर स्टेशन से पूर्वी ज़र्मनी में टेलीफ़ोन के मोटे तारों तक सुरंग पहुँचायी गयी थी। वह चाहते थे कि उस देश की पूरी जानकारी मिलती रहे। जब सुरंग पकड़ी गई तो अमरीका की प्रतिष्ठा में धक्का लगा। आज भी वहाँ की जनता में एक दूसरे के लिये ललक है, इसीलिये एकीकरण के प्रश्न उठते रहते हैं, किन्तु यह काम बहुत आसान नहीं है।

मॉरीशस यात्रा का वृत्तान्त काव्यात्मक है। वास्तव में वह देश है भी किसी गीतिकाव्य की तरह अपने आकार और सुन्दरता में विलक्षण। वहाँ कोई एक नगर के बजाय नगरों का समवाय है। यद्यपि नामकरण की दृष्टि से अलग-अलग हैं। वाकोआ, ग्रॉवासे, पोर्टलुई, केरपिय, काव्रबोन, रोज़हिल और बोवांसे आदि। मॉरीशस का इतिहास जानने में दिक्कत नहीं होती। इतिहासकार प्लिनी ने लिखा कि ई० पू० तीसरी सदी से वह द्वीप ज्ञात है, परन्तु उसके इतिहास की जानकारी वास्कोडिगामा की 16वीं सदी की खोज के बाद से है। द्वीप में क्रमशः पुर्तगाली, स्पेनी, डच, फ्रांसिसी, अंग्रेज़ आते गये। इसको आज़ाद करने के लिये साम्राज्यवादी ताकतों ने दूसरे उपनिवेशों से ग़ुलामों को भेजा। यहाँ आकर उन्होंने अपने ख़ून पसीने से धरती में गन्ना उगाना शुरू किया। फल और सब्ज़ियों की भी खेती शुरू हुई। अंग्रेज़ों ने सबसे अन्त में, लगभग सौ वर्ष तक दास-प्रथा को जीवित रखा। महात्मा गाँधी की यात्रा, डॉ० मन्नी लाल की प्रेरणा तथा शिवसागर रामगुलाम के संघर्षपूर्ण नेतृत्व के कारण बारह मार्च, उन्नीस सौ अड़सठ को यह देश संप्रभुता संपन्न हुआ। उस देश में बहुत-सी जातियाँ और भाषाएँ हैं। जनता की नस्लें मिश्रित हैं क्योंकि दासों की अव्यवस्थित ज़िन्दगी तथा उनकी औरतों के साथ मालिकों का अनैतिक व्यवहार लगातार कायम रहा। अधिकांश लोग भारतीय परिवार के हैं, इसीलिये हिन्दी बोल लेते हैं। रामायण, भागवत और गीता के जरिये उन्होंने अपनी वंश सम्पदा को जीवित रखा है। भारत की भाँति यहाँ आर्य समाज एवं हिन्दू सभा है। यद्यपि गतिविधियों में वे अलग हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन की परीक्षाएँ संचालित होती हैं। विभिन्न सांस्कृतिक संयोगों के बावजूद लोगों में एकता है। आम जनता का झुकाव वामपंथ की ओर है, इसका प्रमाण पिछले चुनावों में मिला है। हिन्दी का विस्तार मॉरिशस में तेजी से हो रहा है। यहाँ की जनता ने भारतीय तीर्थ स्थलों को प्रतीक रूप में रच लिया है, जैसे त्रिवेणी, चित्रकूट आदि। यशपाल ने वहाँ के जिन रचनाकारों का विशेष उल्लेख किया है, वे हैं अभिमन्यु अनत, नन्दलाल, सोमदत्त बखौरी, विष्णुदयाल आदि। उन लेखकों का एक संगठित मंच—हिन्दी लेखक संघ है। संघ की ओर से उनके भाषण आयोजित

किये गये। एक गोष्ठी में प्रतिबद्धता के प्रश्न को लेकर चर्चा हुई।

वहाँ के लेखकों ने जिज्ञासा प्रकट की कि रचनाकार आत्मतोष के लिये स्वतः स्फूर्त लिखता है या साभिप्राय। उसकी राजनीतिक प्रतिबद्धता का आशय क्या है? यशपाल का उत्तर था कि समाज के प्रति संलग्नता से ही कलाकार के विचार बनते हैं, कल्पना जाग्रत होती है। "लेखक का स्वान्तःसुखाय सन्तोष भी सामाजिक भावना और सामाजिक सन्तोष से पृथक् उसके विपरीत सम्भव नहीं हो सकता। .....जनतांत्रिक व्यवस्था में और शासन पर जनकल्याण का उत्तरदायित्व मानने पर वैयक्तिक या सामूहिक जीवन का कौन पहलू राजनीति की परिधि से बाहर रह सकता है। .....समाज में उचित व्यवस्था के प्रति सतर्कता ही राजनीतिक प्रतिबद्धता है"—(**'स्वर्गोद्यान बिना साँप'** पृष्ठ 77-78) भाषा, विधा, वस्तु और शैली के सम्बन्ध में यशपाल ने विचार प्रकट किया कि यदि रचनाकार आम जनता को सम्बोधित करना चाहता है, तो उसे दरबारी संस्कृति से मुक्त होकर आम जनता के परिवेश से ही वस्तु और भाषा का चुनाव करना होगा। उसकी भाषा और साहित्य यथार्थ होंगे।

एक बार यशपाल 'एशिया-अफ्रीकी लेखक कांग्रेस' में भारतीय प्रतिनिधि मण्डल के साथ ताशकन्द गये। कांग्रेस में बच्चों ने मंच से लेखकों का स्वागत करते हुए कहा, "आप ऐसी रोचक और शिक्षाप्रद पुस्तकें लिखें, जिससे संसार भर के बच्चों के विकास में सहायता और प्रोत्साहन मिले और विश्व प्रेम और विश्व शान्ति की भावना का प्रसार हो।"

("बीवी जी कहती हैं, मेरा चेहरा रोबीला है," पृष्ठ 81)

जाहिर है कि संसार को ध्वंस से बचाने का प्रश्न केवल राजनीतिक नहीं, सांस्कृतिक भी है। ज़माने के भारतीय लेखक ऐसे प्रश्नों में नहीं उलझते, यहाँ तक कि प्रतिनिधि मण्डल के नेता ताराशंकर वन्द्योपाध्याय का भी यही मत था। कांग्रेस में लेखकों की ओर से प्रस्तावित संयुक्त वक्तव्य में कहा गया था कि साहित्य और कला द्वारा मानव के विकास, राष्ट्रों की पूर्व स्वतंत्रता और औपनिवेशक दमन से मुक्ति में राजनीति की गंध पा रहे थे, इसलिए संशोधन प्रस्ताव रखा। एशिया-अफ्रीका के प्रतिनिधियों ने इसे अस्वीकार तो किया ही, भारत के लेखकों की ओर से ऐसे प्रस्ताव पर आश्चर्य प्रकट किया। भारतीय लेखक इस प्रस्ताव को तटस्थता की नीति के ख़िलाफ़ मानते थे। उनका आशय था कि इस तरह हम अमरीका की भर्त्सना कर रहे हैं। दूसरे देश के लेखकों ने भारतीय लेखकों पर व्यंग्य और कटाक्ष भी किया। किसी तरह मुल्कराज आनन्द ने स्थिति को सम्भाला। अन्ततः कांग्रेस ने निर्णय लिया कि बालकों के विकास की आवश्यकताओं के अनुकूल विभिन्न राष्ट्र कलात्मक सहयोग से साहित्य का सृजन करें, महिलाओं के योगदान का मूल्यांकन करके भविष्य में उनके सहयोग के अवसर बढ़ायें, सिनेमा और रंगमंच

में साहित्य का प्रभाव बढ़ाया जाये, नाटक के क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव बढ़ाया जाये, सभी भाषाओं के उच्च साहित्य का अनुवाद किया जाय। आयोजन पूरा होने के बाद लेखक के मित्रों के सहयोग से संयुक्त कृषि क्षेत्र का निरीक्षण किया। स्थानीय लोगों में भारत के प्रति प्यार दिखा तथा वहाँ के लेखकों की रचनाओं को पढ़ने के प्रति रुचि। रवीन्द्रनाथ ठाकुर, प्रेमचन्द, कृष्णचन्द्र, रेणु और यशपाल आदि की रचनाएँ वहाँ लोकप्रिय थीं। यह सांस्कृतिक एकता का प्रमाण तो है, साथ ही किसी देश की जनता के प्रति सोवियत जनता के स्वाभाविक प्यार की सूचना भी है।

यशपाल की दूसरे देशों की यात्राओं की ही भाँति देश के विभिन्न क्षेत्रों की यात्राएँ भी कम उपयोगी नहीं रही हैं। सबसे उपयोगी यात्रा थी, सेवाग्राम में गाँधी दर्शन की। यशपाल गाँधीवादी राजनीति और सिद्धान्तों से कभी सहमत नहीं रहे। उन्होंने गाँधी के प्रति असहमति व्यक्त करते हुए **'गाँधीवाद की शव परीक्षा'** लिखा था। गाँधी के आश्रम एवं उनके अहिंसा, सद्व्यवहार, सत्य और सादगी के सिद्धान्तों की व्यावहारिक परीक्षा के लिए वे सेवाग्राम गये। गांधी जी कहते थे कि वह और उसके कार्यकर्त्ता ग़रीबों की तरह रहना चाहते हैं। वे ग़रीबी का कारण मशीनों का प्रचलन मानते थे। यशपाल अपने भौतिकवादी सिद्धान्त के तहत वर्ग असमानता को शोषण और ग़रीबी का कारण मानते थे। वह जानते थे कि ग़रीब अपनी इच्छा से ग़रीब नहीं हैं। गाँधी जी के आश्रम में उन्हें सिद्धान्तों का फलितार्थ नहीं दिखा। जिस कुटिया में गाँधी जी रहते थे, उसे वातानुकूलित बनाने का प्रयास किया गया था। उन्होंने युद्ध विरोधी सत्याग्रह में भाग लेने के लिए ईश्वर विश्वास की शर्त रखी थी। वह देश की आज़ादी के आन्दोलन को व्यक्तिगत आन्दोलन बना रहे थे। वह मनुष्य की शक्ति को इस बहाने कमज़ोर मानते थे। बातचीत के दौरान यह स्पष्ट हो गया था कि वह कम्युनिस्ट विरोधी हैं। सहनशीलता के लिए प्रसिद्ध गाँधी जी बहस के दौरान नाराज़ हो गये और विदाई के नमस्कार का उत्तर भी नहीं दिया। यशपाल ने जब उस मुलाकात को **'विप्लव'** में छापा तो गाँधीजी की प्रतिक्रिया थी कि उन्होंने निजी भेंट का सार्वजनिक उपयोग किया है। यशपाल ने गाँधी जी के विचार और उद्देश्यों के अन्तर्विरोधों को उद्घाटित करके उनके व्यावहारिक जीवन की कमज़ोरियों को रेखांकित किया है।

यशपाल ने देश के भीतर के पहाड़ी क्षेत्र, जैसे—'शिमला से कुल्लू' 'अल्मोड़ा और नैनीताल' का सच्चा चित्र अंकित किया है। 'शिमला से कुल्लू' यात्रा में—नारकण्डा, बागी गढ़वाल, हाटू टिब्बा, लूरी, कुमारसेन, टवनाग, अणी, जुलोरी, वेजार, औट और कुल्लू आदि पड़ावों, वहाँ के जन-जीवन, बीच-बीच में बसे अंग्रेज़ों और महाराजाओं की शान-शौकत की चर्चा है। इस समय लेखक ने कुछ ख़ास बातों का विशेष उल्लेख किया है। उनको तीन साथी मिले, जिनसे इस्लामी धर्म-शास्त्र, खुदा पर विश्वास, कम्युनिज़्म पर बातें हुईं। वे बातें एक वर्ग की हैं, जो

प्रगतिशील राजनीति को जमने नहीं देतीं। यहाँ उनकी भेंट अंग्रेज़ों से भी हुई, जो अपनी ज़िन्दगी और अपने देश की व्यवस्था से ऊबते हैं। चूंकि वे विरोध नहीं कर सकते, इसलिये शराब पीकर अपनी ऊब को भूलते हैं। नारकण्डा में महाराज पटियाला की सामन्ती संस्कृति और पंजाब के गवर्नर की पूंजीवादी संस्कृति का प्रमाण भी मिला। महाराज और गवर्नर के माल असबाब को ढोने के लिए उपलब्ध घोड़े, खच्चर और कुली तैनात थे। आम यात्रियों को कई दिन साधनों की प्रतीक्षा करनी पड़ी। गुरुद्वारे, धार्मिक अड्डे और तथाकथित रामराज्य के केन्द्र देखने को मिले। नैनीताल को लोग भारत का स्वर्ग कहते हैं। लेखक ने अनुभव से लिखा, "बाराती और कामकाजी लोगों का अन्तर नैनीताल की बस्ती के बंगलों, बाज़ार और सड़कों पर समाज के दो भागों के रूप में बहुत स्पष्ट दिखाई देता रहता है। समाज का एक भाग साधनों के प्रतिनिधि पैसे को जेब में भरे संसार के सब संतोष और सेवाओं को खरीद सकता है और समाज का दूसरा भाग इस पैसे के अभाव में उदास और कातर आँखों से पैसे को बस में किये लोगों की ओर देखता रहता है।" (**देखा-सोचा-समझा**, पृ० 113)

लेखक ने नैनीताल के प्राकृतिक परिदृश्यों और ऋतुओं की रोचकता भी चित्रित की है। अल्मोड़ा की यात्रा में एक कैनेडा का साहब, जो ऊब से मुक्ति के लिए यहाँ आया था, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के प्रश्न पर यशपाल से उलझ पड़ा। कह रहा था कि दुनिया को कम्युनिज़्म से बचाना चाहिए। लेखक ने उसकी व्यक्तिगत आज़ादी के स्रोत पर टिप्पणी करते लिखा, "इस आदमी के ख्याल में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का आदर्श यही है कि इसके नौकर अर्जेन्टाइना में इसका कारोबार चलाते रहें और यह अल्मोड़ा में पाँच हजार रुपया महीना खर्च करके अपनी शान दिखाता रहे।" (वीवी जी कहती हैं, मेरा चेहरा रोबीला है, पृष्ठ 43)

यात्रा के इन विवरणों के अलावा यशपाल ने छोटी-मोटी यात्राओं और मुलाकातों से बड़े नामी-गिरामी लेखकों के चरित्र की ओर इशारा किया है। मिश्रबन्धु अपने ज़माने के प्रसिद्ध लेखक थे। उन्होंने लेखक को कहानी सुनाने और राय देने को बुलाया था। यशपाल ने कहानी सुनानी शुरू की और मिश्रबन्धु (दोनों भाई) बारी-बारी से सोते रहे। कहानी समाप्त हो गई तो आँख खोलकर समीक्षक का निर्णय दे दिया, "कहानी आपकी ज़रूर बहुत अच्छी है। हमको बहुत पसन्द आयी। आपकी शैली नयी है। आपकी शैली को प्रेमचन्द की शैली से मिलता-जुलता कहा जा सकता है। परन्तु उसमें और इसमें भेद है। आपको ख़ूब अध्ययन करना चाहिए। आपने किस-किस पाश्चात्य लेखक की पुस्तकों का अध्ययन किया है।" (**देखा-सोचा-समझा**, पृष्ठ 32) जब यशपाल ने कई पश्चिमी लेखकों के नाम लिए तो मिश्रबन्धुओं ने विस्मय से पूछा क्या हिन्दी में इनके अनुवाद हैं?

यशपाल के यात्रा-साहित्य में अन्तर्वृत्तों की पहचान से यह बात स्पष्ट हो

जाती है कि उनके पास मार्क्सवादी दृष्टिकोण था। किसी देश और समाज के द्वन्द्वात्मक सम्बन्धों की पहचान से उन्होंने वहाँ की स्थितियों का मूल्यांकन किया है। उन्होंने देखा है कि मनुष्य की अन्तर्वस्तु और सार तत्त्व दुनिया में एक जैसा है। देश, जाति, नस्ल, रूप, रंग आदि के पर्दे हटा देने पर उनकी एकता समझी जाती है। यात्राओं के जरिये यह एकता न पकड़ी जा सके तो सम्पूर्ण श्रम निरर्थक होता है। श्रम को मूल्यवान और सार्थक बनाने की मार्क्सवादी चिन्ता लेखक के पास थी। वह लिखते हैं, "मूल रूप से एक जाति और प्रकृति के जीव मनुष्य, परिस्थितियों के भेद से किस प्रकार भिन्न भाषाएँ बोलते और भिन्न व्यवहार करते हुए भी कितने एक जैसे हैं। भिन्नता और सादृश्यों का द्वन्द्व मनोरंजक तो है विचारोत्पादक भी हो सकता है।" (**राह बीती**—'दो शब्द, पृष्ठ 7)

यशपाल का यात्रा साहित्य एक संघर्ष है। दुनिया में फैली अवास्तविकताओं, शून्यताओं तथा गोल-मोल आध्यात्मिकता के ख़िलाफ़ एक ताकतवर अनुभव-संभार लेकर वह आगे बढ़ते रहे हैं। मार्क्सवादी दृष्टि की व्यावहारिकता को उन्होंने दुनिया के नक्शे में परखा है। धर्म और साम्यवाद एक साथ रह सकते हैं, इस सबूत से भारत के कठोर पुस्तकीय मार्क्सवादियों के अलावा उन धर्मवादियों को भी नसीहत मिली है, जो धर्म के मानवीय पक्ष पर विश्वास करना चाहते हैं। एक-एक यात्रा से पूँजीवादी व्यवस्था और साम्यवादी संस्कृति का अन्तर स्पष्ट हुआ है। अभिव्यक्ति की आज़ादी अथवा व्यक्तिगत स्वतंत्रता का सही अभिप्राय स्पष्ट हुआ है। वाम संस्कृति के भीतर की आत्मीयता उजागर हुई है। यशपाल किसी सैद्धान्तिक पुस्तक से वह काम न कर पाते, जो यात्रा-साहित्य के द्वारा संभव किया है। उन्होंने सरस शैली में ये पुस्तकें लिखकर न केवल विवरण दिये हैं, वरन् मार्क्सवाद विरोधियों को उत्तर भी दिये हैं। उन्होंने सिद्ध किया है कि—अमरीका चाहता है कि दुनिया में साम्यवाद न आये क्योंकि तब शोषण समाप्त हो जायगा। गाँधी जी भी इसके विरोधी हैं। यदि यह निर्णय लिया जाय कि भाषा और अभिव्यक्ति की शैली में अन्तर होते हुए—ताराशंकर, जैनेन्द्र, गाँधी और अमरीकी राजनीति के सोच की परिणति में कोई अन्तर नहीं है तो असंगति नहीं होगी। यशपाल के यात्रा वृत्त से उन समीक्षकों की भी कलई खुली है, जो रचना की आलोचना सोते हुए भी कर लेते है।

यशपाल के यात्रा-साहित्य से पूँजीवादी समाज में बिखरे अनेक प्रश्नों का उत्तर मिला है। वैज्ञानिक विचारधारा, द्वन्द्वात्मक इतिहास दृष्टि तथा मनुष्य के सुखद भविष्य की कल्पना पर आधारित लेखक की नीयत का ही प्रकाशन उनकी रचनाओं में दिखता है। उन्होंने जो लिखा, उसका निश्चित उद्देश्य है। शिल्प प्रसंग पर यदि बात की जाय, तो कुछ बातें खटकती हैं। इनकी पहली यात्रा पुस्तक '**लोहे की दीवार के दोनों ओर**' को छोड़कर शेष पुस्तकों की सामग्री का चयन आत्मीय नहीं

है। कहीं-कहीं वृत्त उखड़े हुए से हैं। लेखकीय आत्मीयता, जिसे रचनात्मक आवेग से पाया जाता है, उसका यहाँ अभाव लगता है। काफ़ी अनावश्यक बातें भी आई हैं, जिन्हें छोड़ा जा सकता था। यूरोप की यात्राओं का विवरण जितना सार्थक और उद्देश्यपूर्ण है, उतना अपने देश की यात्राओं का नहीं। इस देश के पहाड़ी इलाकों के विवरण में प्राकृतिक दृश्यों की झलक अधिक मिलती है, जीवन वृत्त कम। जो जीवन-वृत्त हैं, उनमें अनावृत्तियाँ हैं। उसकी पहचान अलग होती रही है। फिर भी यशपाल का यात्रा-साहित्य राहुल के बाद हिन्दी में विशाल उपलब्धि है।

बात पर बात

यशपाल की ख्याति का कारण उनका कथाकार होना है। यह उचित ही है क्योंकि उन्होंने अपना श्रेष्ठ इसी विधा में रचा। लेकिन उनके लिये यही सब कुछ नहीं था। वह अपना समय, निरर्थक नहीं बिताते थे। जब वह कहानी या उपन्यास न लिख पाते थे, तब वह और काम करते थे। वह राजनीतिक निबन्ध लिखते, विश्व के महत्त्वपूर्ण साहित्य का अनुवाद करते और डायरी लिखते। एकाध प्रयोग नाटक के क्षेत्र में भी किया। मित्रों को वह पत्र बहुत चाव से लिखते थे, पूरे मन से। पूरी बात कहते और दूसरों की पूरी बातें सुनते। उनके पत्रों में हम समय की हलचल पाते हैं। वे साहित्य की निधि हैं। वह पत्रों के जरिये लोगों से परामर्श करते, दूसरे की पुस्तकों पर राय व्यक्त करते तथा अपने आरोपों का उत्तर देते। ग़जब का आत्मविश्वास था, इस लेखक में। मामूली आदमी की बात भी जम गयी तो अपने में सुधार कर लिया और नहीं जमी, तो बड़े-बड़े आलोचकों को अनसुना कर दिया। उनके पत्रों का एक संकलन मधुरेश ने किया है, जिसमें यशपाल के द्वारा मधुरेश को ही लिखे गये पत्र हैं। अन्य लेखकों या मित्रों को लिखे और भी पत्र कभी संकलित हो सकते हैं। सम्भव है, वे भी कभी प्रकाशित हों। यशपाल ने हर महत्त्वपूर्ण प्रसंग या सवाल को चाहे वह पत्रों के मार्फ़त ही क्यों न हो, अवश्य व्यक्त किया है। अपनी पुस्तकों में समूचे सवालों का रचनात्मक इस्तेमाल कर लिया है। फलतः उनका साहित्य, उनकी जीवन-गाथा, युग-गाथा तथा रचनात्मक क्षमता का लेखा-जोखा बन गया है।

यशपाल ने अनुवाद के लिये, जो किताबें चुनीं, वे हैं : लुई फ़िशर की—'गांधी और लेनिन', वदी कारवायायेव की—'डिसाइसिव स्टेप' चीनी कम्युनिस्ट पार्टी, अमरीकी लेखिका पर्ल एस. बक की—'पैवेलियन आफ विमेन', गालिना निकोलायेवा की—हार्वेस्ट, इत्यादि। अनूदित पुस्तकें हैं—'गाँधी और लेनिन', पक्का कदम, चीनी कम्युनिस्ट पार्टी, जनानी ड्योढ़ी और फसल। इनके अलावा—'चलनी में अमृत' (कमला मार्कण्डेय का अंग्रेज़ी उपन्यास) तथा जुलैखा (असकद मुख़्तार का उपन्यास) अनूदित उपन्यास प्रकाशित हुए हैं।

यशपाल ने एक नाटक लिखा था—'नशे-नशे की बात', जो 1952 में प्रकाशित हुआ। उनके राजनीतिक और संस्मरणात्मक निबन्धों की पुस्तकें हैं—**'बात-बात में बात** (1650)', **'राम राज्य की कथा** (1950)', **देखा-सोचा-समझा**

(1951)' तथा '**बीवी जी कहती हैं, मेरा चेहरा रोबीला है**' (1959) **क्रांतिकारी जीवन के संस्मरण—सिंहावलोकन** भाग-1 (1951), भाग-2 (1952) तथा भाग-3 (1955)। विप्लव के स्थायी स्तंभ की अन्य प्रकाशित पुस्तकें हैं—'**न्याय का संघर्ष**', '**चक्कर क्लब**' और '**जग का मुज़रा**'। उल्लेखनीय बात यह है कि यशपाल ने अपनी आतंकवादी गतिविधियों को भी दार्शनिक जामा पहनाया था उन्होंने भगवती चरण वर्मा के साथ 'हिन्दुस्तानी समाजवादी प्रजातंत्र सेना' के घोषणा पत्र के रूप में '**फ़लासफ़ी आफ द बम**' लिखा था।

इधर लोकभारती प्रकाशन से उनकी कुछ अप्रकाशित कहानियाँ 'लैम्प शेड' के नाम से प्रकाशित हुई हैं। यशपाल का वह लेखन, जो रचनात्मक ढंग से कथा या नाटक की सीमा में नहीं आता, विशुद्ध राजनीतिक है। संस्मरण हों या समस्या चिन्तन—सबके पीछे न केवल राजनीतिक दृष्टि है, वरन् व्याख्या और विश्लेषण का आधार भी राजनीतिक ही है। इस तरह के लेखन में पत्र निकालते हुए, दूसरी पत्रिकाओं को पढ़ते हुए या किसी केन्द्र में बहसों से उलझते हुए यशपाल ने अपनी बात को ऊँचाई तक पहुँचाया। प्रतिभा के धनी होने और प्रत्युत्पन्नमतित्व के कारण वह कभी पराजित नहीं हुए। इस तरह की जितनी बातें हैं, वे सभी पुस्तकों के रूप में हैं—'**बात-बात में बात**' से लेकर '**सिंहावलोकन**' से होते हुए 'जग का मुज़रा' तक। ये पुस्तकें तर्कपूर्ण टिप्पणियों से भरी पड़ी हैं। 'सिंहावलोकन' के विषय में उन्होंने खुद बताया है कि, 'हि.स.प्र.स. के संबंध में मेरे संस्मरण, मेरी आप बीती या मेरे साथियों की आप बीती ज़रूर हैं, परन्तु मेरी सम्पूर्ण आप बीती इन संस्मरणों में नहीं आ सकती, आनी भी नहीं चाहिये। जब भी कभी स्वतंत्रता-प्राप्ति के प्रयत्नों का इतिहास लिखा जाने का समय आयेगा, यह उल्लेख उपयोगी हो सकेंगे।'

(**सिंहावलोकन**, भाग-3 भूमिका)

'**न्याय का संघर्ष**' पुस्तक में कुल उन्नीस निबन्ध हैं। इसमें गाँधीवाद और उनके सत्याग्रह, पूँजीपति और मज़दूर, ग़रीब के भगवान, मज़हब का मुलम्मा, किसान-मज़दूर श्रेणी समस्या जैसे विषय हैं। 'समाज के शत्रु' निबन्ध में वर्गीय शत्रुता की पहचान के साथ स्वतन्त्र रूप में न्याय के ढाँचे को वर्गीय नैतिकता से जोड़ा गया है। यशपाल ने इन निबन्धों के द्वारा स्वतन्त्रता की लड़ाई के दौर में लोगों को लगातार आगाह किया था कि ग़ुलामी समुद्र पार से ही नहीं आती—यहाँ भी मौजूद है। वास्तव में वह एक व्यवस्था से जन्मी है। वह लिखते हैं,—"इस पुस्तक में हमारी नवीन परिस्थितियों के लिये अनुपयुक्त और जर्जर न्याय की धारणा का विश्लेषण (Vivisection) किया गया है। इस विश्लेषण में, हमारी वर्तमान न्याय की धारणाएँ, क़दम-क़दम पर मौजूद विरोधाभास प्रत्यक्ष हो जाते हैं। एक नवीन सामाजिक व्यवस्था और क्रम की ओर हमारा ध्यान जाता है।' (**न्याय का संघर्ष**—भूमिका)।

इसी तरह **'चक्कर क्लब'** पुस्तक के आठ निबंधों की भी रचना हुई, जिसमें लेखक ने उन विषयों को छुआ है, जो बैठे-ठाले आदमी की बातचीत में कहीं भी आ जाते हैं। होटल में चाय पी रहे हों, रास्ते चलते बतिया रहे हों या कहीं दरबार लगा हो। गाँधी के प्रभामंडल में रामराज्य और भगवान की बातें आज़ादी की जंग में भी आम थीं। 'दरिद्र नारायण' भी चर्चा-परिचर्चा का विषय था। स्त्रियों की स्वतंत्रता की बात पहली बार उसी समय उठी। अत: ये विषय 'चक्कर क्लब में विशेष हैं। 'चक्कर क्लब' लोगों की अनियोजित किन्तु मन से निकली बातों की टोह में रहता था और सबका भंडाफोड़ करता था। विप्लव में इसी नाम के स्तम्भ थे तथा 'विप्लवी ट्रैक्ट' में 'बेकार एण्ड कम्पनी लिमिटेड' के नाम से यह क्लब समाज की भीतरी जाँच-पड़ताल करता रहा। इस पुस्तक के पढ़ने से आज भी वह पड़ताल ताज़ी लगती है। भूमिका में 'बेकार एण्ड कम्पनी' की सदस्यता के (6) नियम बहुत ही विदग्ध और रोचक हैं। उदाहरण के लिये उन नियमों में से एक है, —"ऐसा किसान, जो पर्याप्त भूमि न होने के कारण या अपने श्रम की भूमि से की गयी पैदावार भूमि के मालिक द्वारा छीन ली जाने के कारण परेशान रहते हैं। किसानों को ऐसी सन्तान, जो अपनी पैतृक(औरस) भूमि के अनेक आदमी में बँट जाने और भूखे मरने की आशंका से व्याकुल हैं, बेकारों की 'एण्ड कम्पनी' या सहायकों में शामिल हो सकते हैं।" (**चक्कर क्लब**, पृष्ठ 7)

स्पष्ट है कि बेकार एण्ड कम्पनी या चक्कर क्लब के सदस्य लोगों को जगाने का काम करते थे। यह जन-शिक्षा के लिये शुरू किया गया प्रयत्न था। यशपाल ने इसी क्रम में जन-साहित्य का सवाल उठाया था। उन्होंने साहित्य को समाज के अनुसार स्वत: परिवर्तित होने वाली चीज़ कहा। नारियों की मिलन या विरह-गाथाओं के आधार पर लिखे तमाम परम्परागत साहित्य के बदले आज के रचना-कारों से उन्होंने पूछा कि क्या वे अभी भी वैसा ही लिखेंगे? उनकी अनुभूति का भौतिक आधार अब उस तरह कहाँ है? 'आज प्रशस्त विशाल प्रासादों में गवाक्ष से आती हुई वर्षा की महीन-महीन फुहार, सामने क्षीण कटि, कसी हुई अंगिया में जोबन दबाये, मेंहदी से चित्रित दो उँगलियों से घूँघट का कोना उठा, कान तक फैले नयनों में मुस्कराहट भर बाण छोड़ती हुई नायिका कहाँ है?"

(वही, पृष्ठ 9)

अब तो स्त्री हो या पुरुष-समाज, अधिकारों के लिये लड़ाई का युग है। यशपाल ने इसी लड़ाई के लिये अपने चरित्रों को रचा। इस युग में सबकी आज़ादी की माँग तीव्र हुई तो पूँजीवादी व्यवस्था ने व्यक्तिगत आज़ादी की चीख़-पुकार शुरू की। यह कहा कि समाजवादी व्यवस्था व्यक्तिगत आज़ादी छीनती है। यशपाल ने इस गुत्थी को सुलझाते हुए अपने लेखों में इस तरह की बहस की, जैसे वह हर आदमी को पूँजीवाद और समाजवाद का फ़र्क समझा देना चाहते हों।

'बीवी जी कहती हैं, मेरा चेहरा रोबीला है' किताब के लम्बे निबन्ध में उन्होंने एक जगह लिखा, 'पूंजीवादी प्रजातन्त्र के कानून की दृष्टि में, मनुष्य मात्र के समता के आदर्श के अनुसार अपनी बीमार बुढ़िया को देखने के लिये वागेश्वर जा सकने में असमर्थ जमनादत्त; बीस रुपये की नौकरी के लिये लखनऊ-दिल्ली जा सकने में असमर्थ लक्ष्मन, पचपन रुपये मासिक पर अच्छा मकान ले सकने में असमर्थ मेरे मित्र और अपने व्यवसाय के लाभ में से धर्म-कार्य के लिये निकाल दिये नगण्य अंश से पाँच कालेज, पच्चीस धर्मशालाएँ बना सकनेवाले, प्रत्येक प्रदेश की विधान सभाओं में अपने आदमी चुनवा सकनेवाले व्यवसायी राजा सब एक समान हैं। पूंजीवादी प्रजातंत्र में कानूनन सबको समान व्यक्तिगत स्वतन्त्रता है।" (पृष्ठ 53)

यशपाल की बहस, सिद्धान्त कथन, उदारहण और तर्क श्रृंखलाएँ अनुभव के आधार पर होती थीं। आँखिन देखी का इतना व्यापक वृत्तान्त इस युग में प्रेमचन्द के पास था या यशपाल के पास। यशपाल ने तो अपनी एक किताब का नाम ही रखा **'देखा-सोचा-समझा'**। इस किताब में सेवाग्राम, शिमला और नैनीताल की यात्राओं के अलावा—'साहित्य का मूल्यांकन,' 'नादिरशाही', 'व्यक्तिगत स्वतंत्रता,' 'विचारों की स्वतंत्र-सत्ता' और 'अपने सम्पर्कों के प्रति मेरे देय'—विषयक निबन्ध हैं। सभी निबन्ध व्यावहारिक समाज की समीक्षा हैं। समीक्षा के पीछे मार्क्सवादी दृष्टि है। इसी आधार पर उन्होंने गाँधी के रामराज्य की परवर्ती परिकल्पना तथा उनके असंभव तथा अवैज्ञानिक आदर्शों के खोखलेपन को सिद्ध किया है। जैनेन्द्र के विवाद के दौरान उन्होंने बताया कि, "मैंने गाँधीवाद के सैद्धांतिक और क्रियात्मक दोनों ही रूपों को अपने धर्म चक्षुओं से, उसके पूरे इतिहास में देखा है और उसे जनता को आत्म निर्णय पाने का अधिकार पाने के प्रयत्न से रोकने का प्रयत्न मात्र ही पाया है।" (वही, पृष्ठ 107)

'रामराज्य की कथा' तथा, **'गाँधीवाद की शव परीक्षा'** में इस विषय पर लेखक की विस्तार के साथ व्याख्या मौजूद है।

इस प्रकार, कुल मिलाकर यशपाल का सारा लेखन अपने युग का प्रहरी है। हमारे देश के प्राचीन इतिहास में आम आदमी की लड़ाई तथा शोषकों की साज़िशों का ब्योरा बहुत ही कम उपलब्ध है, पर इस काल की लड़ाई में इन जैसे लेखकों ने यह नहीं होने दिया। इन्होंने ज़माने की इतनी सच्ची तस्वीरें अपने ग्रंथों में भर दी हैं कि जब आधुनिकता का आलोचनात्मक यथार्थ इतिहास लिखा जायेगा तथा समाजवादी भारत के निर्माण की प्रक्रिया में असलियत का पता लगाया जायेगा, तो प्रामाणिक दस्तावेज़ तथा मनुष्य की भीतरी हलचलें यहीं से मिलेंगी। ये सच्चे और सावधान लेखक की अनोखी आयामी पहचान है।

यथार्थवाद की कसौटी पर

हिन्दी में स्वच्छन्दतावादी युग के आते ही, मुक्ति के अनेक प्रयासों के चलते यौन-नैतिकता के सामन्ती बंधन टूटने लगे थे। स्त्री इस बात से इनकार करने लगी थी कि वह मात्र क्रय-विक्रय की वस्तु है। वह अपने अस्तित्व के स्रोतों की खोज, रक्षा तथा विकास के प्रयत्नों में संलग्न हो रही थी। पश्चिम में नारी और पुरुष की यौन-स्वतंत्रता को लेकर जो आंदोलन चले थे, उनका प्रभाव भी यहाँ पड़ने लगा था। आदर्शवाद और अश्लीलता, प्रकृतवाद और यथार्थवाद के बीच टकराव —यहाँ के रचनाकारों में मौजूद था। प्रसाद के कंकाल, निराला के अलका तथा शरतचन्द्र के उपन्यासों ने यह साबित कर दिया है कि जो नया पुरुष इस देश में जन्म ले रहा है, उसकी मानसिक माँग क्या है? यह बात अचानक नहीं थी कि विदेशों से आनेवाली वे रचनाएँ यहाँ लोकप्रिय हो रही थीं, जो स्त्री-पुरुष की समान स्वाधीनता की कथा वस्तु पर केंद्रित हैं। जैसे—अन्ना केरेनिना(तॉल्सतोय) स्त्री का हृदय (मोपाँसाँ) तथा गाड़ी वालों का कटरा (कुप्रिन) इत्यादि। इस पृष्ठभूमि में ही, हिन्दी के उपन्यासकार—स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को सहज बनाने के लिए कठोर मर्यादाओं तथा जड़ सामाजिक संस्थाओं पर प्रहार करते थे।

प्रगतिशील आंदोलन के शुरू होते ही इस तथ्य की छान-बीन की जाने लगी। स्वतंत्रता और अराजकता के बीच चुनाव की प्रक्रिया शुरू हुई। मार्क्स और फ्रायड का प्रभाव भारतीय समाज में इस मौके पर एक साथ प्रकट हुआ। इसलिये कहीं-कहीं विचित्र तर्क तैयार किये गये। कुछ लोगों ने कहा कि जीवन के और क्षेत्रों में इन दोनों की स्थापनाएँ अलग-अलग हैं, पर यौन-सम्बन्धों में इनमें मूल विरोध नहीं हैं। 'नया साहित्य और नारी' अथवा 'साहित्य और नारी की समस्या' —इस तरह के निबन्ध लिखे जा रहे थे, जिन पर भिन्न-भिन्न मत व्यक्त होते थे। दो खेमें स्पष्ट रूप से बन गये थे। यशपाल, मुल्कराज आनन्द, पहाड़ी, अंचल, नरोत्तम नागर और कृश्न चन्दर जैसे लेखक एक ओर थे, तथा रामविलास शर्मा, केदार-नाथ अग्रवाल, हंसराज रहबर आदि दूसरी ओर। पहली तरह के लेखक जोला, फ्लावेयर और लारेंस की बातें मानते थे, इस मामले में। 'स्वच्छ गिलास से स्वच्छ जल' के लेनिन के सूत्र को कुछ मार्क्सवादियों द्वारा यौन-सम्बन्धों की स्वतंत्रता के लिये भी प्रस्तुत किया जाता था। रामविलास शर्मा ने इसका प्रतिवाद करते हुए लिखा—'भूख, प्यास, नींद की तरह सेक्स की भी इच्छा पूरी होनी चाहिए, लेकिन

गलियों में मुँह डालकर नहीं। वास्तव में 'स्वच्छ गिलास में स्वच्छ जल' पीने का सिद्धांत सेक्स के बारे में पूँजीवादी सिद्धांत है, जिसे धनी लोग नित्य प्रति अमल में लाते हैं।" (**प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ** पृष्ठ 119)

प्रगतिशील लेखक संघ के भीतर इस बात को लेकर जो मतभेद थे, वे भिवंडी के अधिवेशन (1949) में भी उभरे।

यशपाल ने अपनी रचनाओं में सेक्स के संदर्भों का प्रयोग जितनी अधिकता से किया है, उसको देखते हुए आलोचकों ने उनके ऊपर फ्रायड का अतिरिक्त प्रभाव बताया है। प्रश्न उठता है कि यशपाल के यथार्थवादी विश्वासों में से ये बातें कहाँ तक पूरक या बाधक हैं? क्या ये उनमें निम्न पूँजीवादी प्रवृत्तियों के अवशेष के रूप मौजूद हैं या साहस से लेखक ने इस वर्जित क्षेत्र में अधिकारपूर्वक प्रवेश किया है? इसकी छानबीन के लिए एक बार फिर यशपाल के विचारों और पात्रों को नमूने के रूप में देख लेना चाहिये। उन्होंने अपनी पुस्तक '**मार्क्सवाद**' में कहा है—"मार्क्सवाद स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध को पुरुष की सम्पत्ति और धर्म के भय से जकड़ देने के पक्ष में नहीं। वह स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध को स्त्री-पुरुषों की प्राकृतिक आवश्यकता और कर्त्तव्य का सम्बन्ध मानता है। इसके लिए वह दोनों में से किसी का एक दूसरे का दास बन जाना आवश्यक नहीं समझता। इसके साथ ही वह स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध में उच्छृंखलता को उचित नहीं समझता।" (पृष्ठ 85)

यशपाल ने उक्त स्थापना को सिद्ध करने के लिये कई-कई रूपों में अनेक पात्रों की रचना की तथा उन्हें उन परिस्थितियों में ले गये, जहाँ वे अपनी दमित इच्छाएँ तोड़ दें। वे अपने को प्रकृतस्थ करें। वे किसी को अपना स्वामी अथवा दासी कहने की अवधारणा से बाहर लायें। पुरुष प्रधान समाज में नैतिक मूल्यों को सम्पत्ति तथा पुरुष के पक्ष में मोड़ लिया गया है। धर्म का उपयोग इन्हीं मूल्यों को स्थायी बना देने के लिए हुआ है। यशपाल ने आर्यसमाज के आश्रम में रहकर यह अच्छी तरह से देख लिया था। यशपाल इस आश्रम में न रहे होते और लड़कपन से उन्हें इस तरह की नैतिकताओं में न बाँधा गया होता और इन बंधनों के भीतरी परतों को उन्होंने अपनी निगाह से न देखा होता, तो तय है कि वह अपनी रचना के लिये इस इलाक़े में बहुत ज़्यादा दौड़ न लगाते। यह बात उनके दिमाग़ में मूल ग्रंथि के रूप में पैठ गई थी। इसीलिये इसे खोलकर साफ़ कर देने का वह अपना प्राथमिक कर्तव्य मानने लगे। अनेक कहानियों तथा प्रायः सभी उपन्यासों में वे इस समस्या को ले आये तथा यौन-सम्बन्धों की सहज स्वतन्त्रता को उन्हीं लोगों से जोड़ा, जो क्रान्तिकारी परिवर्तन के कार्यों में लगे हुए हैं। इनसे भिन्न लोगों में पायी भी जानेवाली इस प्रवृत्ति को उन्होंने दर्शाया—पर वहाँ भोगवादी चरित्र अपनी असलियत के साथ खुल गया। उदाहरण के लिये—'**दादा कामरेड**' उपन्यास में—हरीश और शैल, **पार्टी कामरेड**—में भावरिया तथा गीता, **मनुष्य के रूप में**

धनसिंह तथा सोमा; **दिव्या** में—दिव्या और पृथुसेन; **क्यों फँसे**—में भास्कर और मोती या हेना इत्यादि की उपस्थिति को लिया जा सकता है। इन उपन्यासों में ये पात्र केवल इतने ही नहीं हैं कि वे शारीरिक भूख को पूरा करने के लिये इधर-उधर घूमते हों। वे अपना काम करते हैं तथा जीवन-स्थितियों के बीच इस तरह की अपनी आवश्यकता की पूर्ति भी करते हैं। यहाँ स्त्रियों का चरित्र ज़्यादा खुलता है। वे अपनी स्वाधीनता के लिये संघर्ष करती हैं तथा जहाँ भी पुरुष उनको अपने अधीन समझने लगता है, वे उसे छोड़ देती हैं। पातिव्रत की समस्या को वह नये ढंग से पारिभाषित करते हैं। भारतीय रूढ़िग्रस्त समाज में विधवा के सारे मानवीय अधिकार छीन लिये गये हैं। यहाँ तक कि बाल विधवाएँ भी विधवा होने के साथ अपनी आज़ादी खो बैठती हैं। 'मृत्युंजय', 'जादू के चावल', 'एक सिगरेट', 'वैष्णवी' आदि कहानियों में विधवाओं की दुर्दशा का चित्रण है। वे अपनी प्राकृतिक इच्छाओं को दबाते हुए घुटती रहती हैं। लड़कियों का रंग काला है या चेहरों पर दाग़ हैं तो कोई उनकी शादी नहीं करता। उन्हें भोगना चाहता है, पर विवाह से इनकार कर देता है। सम्पन्न लोगों के लड़के-लड़कियों की अपेक्षा दहेज से ज़्यादा प्यार करते हैं, तथा ग़रीबों की गुणवान कन्याएँ दहेज के अभाव में घुटते हुए शादी के बिना रह जाती हैं। कितनी लड़कियाँ अनाथ होकर वेश्यालय चली जाती हैं। यशपाल की नज़र में स्त्री की ग़ुलामी सामन्तवाद—पूँजीवाद की देन है। इसी ने पुरुष को स्त्री से श्रेष्ठ दर्जा तथा अधिकार दिये हैं। इन्हीं अधिकारों ने यौन-नैतिकता का एक पक्षीय आधार बुना है। इसमें स्त्री को आज़ादी नहीं है और पुरुष के लिये विशेष प्रतिबन्ध नहीं है। यशपाल ने प्रयत्न किया है कि दोनों को इस मामले में बराबर आज़ादी मिले।

अपनी मान्यता के अनुरूप ही, उन्होंने हरीश के सामने शैल के निरावरण (**दादा कामरेड**) और '**क्यों फँसे**' में मोती और भास्कर तथा हेना और भास्कर के सम्बन्धों पर उठे सवालों के उत्तर दिये हैं। उत्तरांश है—"आप दिव्या के पृथुसेन के प्रति आत्मसमर्पण के कथानक की सम्भावना के लिये क्षमा कर सकते हैं परन्तु शैल के हरीश को आत्मसमर्पण करने को आवश्यक नहीं समझते। × × × मेरे विचार में ऐसे प्रसंग में आत्मसमर्पण शब्द ही भ्रामक है। नारी सदा समर्पण ही करे, वह पाना भी तो चाह सकती है। वांछित को पाने के अधिकारों से उसे क्यों वंचित किया जावे? शैल किसी की सम्पत्ति नहीं, एक व्यक्ति थी। उसकी इच्छा का महत्त्व था। उसने भय से, प्रलोभन से, केवल क्षणिक वासना से अथवा किसी को धोखा देने के लिये कुछ नहीं किया। उसने बहुत सोच विचारकर, जो चाहती थी, उसके परिणाम और कठिनाई को समझ कर ही किया (**यशपाल के पत्र**, सं० मधुरेश, पृष्ठ 51-52)। यौन सम्बन्धों के बारे में वह कहते हैं—"हमारी परम्परागत यौन-सम्बन्धी मान्यताएँ शाश्वत सत्य नहीं मानी जा सकतीं। वे परिस्थिति विशेष

में सामाजिक सुव्यवस्था के लिये स्वीकार की गयी थीं। तब से परिस्थितियाँ कितनी बदल चुकी हैं। सबसे बड़ी बात सन्तति-विस्तार, जो व्यक्ति और समाज की सबसे बड़ी शक्ति थी, आज की परिस्थितियों में सबसे बड़ा सामाजिक खतरा बन गयी हैं। यौन-प्रवृत्ति को मनुष्य का कोई विकास या विज्ञान रोक नहीं सका है, परन्तु यौन-तृप्ति के परिणाम को रोकना सम्भव हो गया है। इसलिये यौन-सम्बन्धी मान्यताओं द्वारा व्यक्ति को बाँधे रखने में क्या संगति है—बशर्ते वे अव्यवस्था का मूल कारण न बनें।.....जनसंख्या के विस्फोट के राहु को सामने देखकर मेरा निश्चित मत है कि समाज के कल्याण के लिये स्त्री-पुरुषों के संगमों का 99प्रतिशत अवसरों पर परिणाम से मुक्त रहना आवश्यक है" (वही, पृष्ठ 90)। यहाँ यह फ़र्क करना ज़रूरी है कि यशपाल यौन-सम्बन्धों को मात्र वासना से नहीं जोड़ते। वे इसे उच्छृंखलता का पर्याय नहीं बनने देना चाहते। उनके अनुसार ये सम्बन्ध पूर्ति के रूप में बनते हैं, विलास या शौक के रूप में नहीं। इन सम्बन्धों का लक्ष्य स्त्रियों के गुप्त व्यवहारों को रोकना या वेश्यालयों के अपराध बन्द करना है। लेनिन ने कहा था कि —"यौन जीवन में उच्छृंखलता पूँजीवादी है, वह अधःपतन का लक्षण है। सर्वहारा उठता हुआ वर्ग है। उसे अनुभूति शून्य अथवा उत्तेजित बनाने वाले किसी नशे की ज़रूरत नहीं है।" (**नारी मुक्ति**—पुस्तिका, प्रगति प्रकाशन, मास्को पृष्ठ 135)यशपाल की समझ इस तरह की थी कि वह पूँजीवादी अधःपतनवादी प्रवृत्तियों को अपनी रचनाओं में न आने दें। दरअसल उनकी नज़र उस जगह थी, जहाँ स्त्रियाँ अपनी प्राकृतिक इच्छाओं की पूर्ति के लिए तरसती हैं। व्यवस्था के खुले व्यवहार में वे पंगु हैं, इसीलिये वे अपनी आवश्यकता की पूर्ति करती हैं—छिपकर। वे कभी उन्माद में आ जाती हैं या कभी किसी पुरुष के साथ भाग जाती हैं। अपनी इच्छा से पति का वरण न कर पाने के कारण वे परिवार में रहते हुए परपुरुषगामी बन जाती हैं। अनमेल विवाह को खोलनेवाली बहुत कहानियाँ हैं। प्रमाण के लिये हम 'तीसरी चिंता', 'औरत', 'सोमा साहस', 'पुरुष भगवान' तथा 'मिट्टी के आँसू' को देख सकते हैं। पहाड़ी प्रदेशों में यौन-समस्या को लेकर लिखी गई कहानियाँ हैं, यथा—'दुखी दुखी', 'हलाल का टुकड़ा', 'गंडेरी', तथा वेश्याओं के संकट पर। 'भाग्य चक्र', जैसी कहानियाँ।

यशपाल के इस कथा-साहित्य के मूल्यांकन पर दो तरह की धारणाएँ द्रष्टव्य हैं—"यशपाल के पात्र जनजीवन के प्रतिनिधि नहीं हैं। वे उस वर्ग के प्रतिनिधि हैं,जिनके लिये सेक्स और आत्मपीड़ा की समस्याएँ प्रधान हैं—"(रामविलास शर्मा : **प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ**, पृष्ठ 119), तथा "यशपाल जी जीवन के प्रत्यक्ष अनुभव का प्रयोग केवल विषय (थीम) के अवधान की दिशा में ही करते हैं। इस थीम के अनुरूप कल्पना से वह पूरी विषय वस्तु निर्मित कर लेते हैं। घटनाओं के निर्माण में यशपाल की रचनात्मक कल्पना उनकी रचना-प्रक्रिया

का मूल सूत्र है। प्रेमचन्द से यशपाल का तथा अन्य सामयिक लेखकों का यही आधारभूत पार्थक्य है, जो उनकी रचना-प्रक्रिया के भेद से स्पष्ट होता है। 'दो मुंह की बात', 'तुमने क्यों कहा था, मैं सुन्दर हूँ', 'धर्मरक्षा' जैसी कहानियाँ किसी वास्तविक घटना का चयन-मात्र नहीं है, लेखक की रचनात्मक कल्पना ने विषयगत अन्तर्विरोधों के अनुरूप घटनाएँ गढ़ ली हैं।" (सुरेन्द्र चौधरी : **हिन्दी कहानी : प्रक्रिया और पाठ**, पृष्ठ 57) सुरेन्द्र चौधरी ने यशपाल के साहित्य पर उस समय विचार किया, जब उनकी परिणति भी देख ली जबकि रामविलास जी के विचारों में चौथे-पाँचवें दशक का प्रभाव है। वह वाग्युद्ध (पोलिमिक्स), जिसमें फ्रायड के जाल में फँस जाने का ख़तरा था। ख़तरा जितना आसन्न होता है, सतर्कता भी उतनी निर्मम। आज यह कहना आसान है कि यशपाल ने अपने अनुभवों को ही कल्पना से रचा है। कुल मिलाकर यथार्थ की यह ज़मीन ही है विकास मूलक।

यशपाल के कथा-साहित्य में कुछ दूसरे पक्ष भी हैं, जैसे धर्म प्रसंग। धर्म वस्तुतः वर्गीय हितों की रक्षा के काम आता है। उन्होंने 'भगवान किसके' जैसी कहानी भी लिखी। 'ज्ञानदान' और 'धर्म रक्षा' कहानियों मे तथाकथित धर्म वर्गीय परिणति को खोल दिया। माया और ब्रह्म का पता नहीं चला, जब जीवन की वास्तविक स्थितियों का सामना हुआ।

वर्गीय सम्बन्धों में सबसे ज़्यादा भटकाव मध्यवर्ग में आते हैं। यह दोनों मूल वर्गों से सम्बद्ध होकर सचेत न हुआ, तो बिना पेंदी के लोटे की तरह होता है। झूठी महत्त्वाकांक्षाएँ इसमें खोखली इज़्ज़त के संस्कार पैदा कर देती हैं। 'परदा', 'गंडेरी', 'काला आदमी', 'रोटी का मोल', 'देवी की लीला' तथा 'मक्खी या मकड़ी' कहानियाँ इस वर्ग की कमज़ोरियों को इस तरह पेश करती हैं, कि वह चाहे तो अपनी स्थिति समझकर सही जगह पहुँच जाये। 'आदमी या पैसा' कहानी का एक पात्र, पत्रकार रामबाबू कहता है, "मैं डेढ़ हज़ार रुपये में अपना श्रम बेचता हूँ परन्तु मैं अपने पूंजीपति मालिक के हाथ में एक चाबुक की तरह हूँ। तुम समझ लो, मेरा मालिक मुझे जनमत पैदा करने की कीमती मशीन समझता है, जिसे वह अपनी सामाजिक और राजनीतिक शक्ति बनाये रखने के लिये चला रहा है।"
(चित्र का शीर्षक, पृष्ठ 33)

यशपाल की क़लम यथार्थ की अनेक स्थितियों और प्रवृत्तियों को पकड़ती है। उसके भीतर घिसटते-पिसते मज़दूर, पहाड़ी कुली, शहर के रिक्शा चलानेवाले, श्रमिक तथा किसान भी आये हैं। यह बात अलग है कि ये विषय ज़्यादा नहीं हैं। उपन्यासों में यशपाल अपने समय के इतिहास को मनुष्य जीवन की ऐतिहासिक प्रक्रिया से जोड़ते हैं तथा इतिहास में वर्तमान की तलाश करते हैं। **पार्टी कामरेड, दादा कामरेड, देशद्रोही, मनुष्य के रूप, झूठा सच, मेरी तेरी उसकी बात** आदि में

हमें आज़ादी पूर्व और आज़ादी के बाद का इतिहास मिलता है, पर यह इतिहास अपने भीतर वे सारे रोग और अन्तर्विरोध समेटे है, जो पहले से चले आये हैं। देश के विभाजन की तस्वीर में साम्प्रदायिक शक्तियों का गुणनफल इसीलिए तो उजागर हो जाता है। सामन्ती-पूँजीवादी गँठजोड़ का खुलासा पेश करने में यह लेखक प्रेमचन्द के आगे आता है। यशपाल के कम्युनिस्ट पात्र अधिकांश रचनाओं में बने बनाये नहीं आते। वे ज़्यादातर रचना के भीतर आकर बनते हैं। उनकी निर्माण-प्रक्रिया में लेखक वैचारिक सूत्रों को खोलता जाता है। उनके अनुसार वे कभी-कभी विचारों को चरित्रों में उतारते हैं। वे अपने लक्ष्य को मज़बूती से अपने पात्रों में खोलते जाते हैं। एक बार जैनेन्द्रजी ने यशपाल से कहा था, कि वह मार्क्सवाद को नष्ट करने के लिये उसको समझाना चाहते हैं तो वह उन्हें मार्क्सवाद समझायें। यशपाल ने यह घटना इसीलिये बतायी कि कुछ लोग इस दर्शन को समझने के पूर्व ही उससे निपटने का निश्चय कर चुके होते हैं। उपन्यासों में वे ऐसे पात्रों को तो लाते ही हैं तथा उन पात्रों को भी, जो परिस्थितियों से सीखते-सीखते विचारों के स्रष्टा बन जाते हैं। उन्होंने अपनी यह बात जैनेन्द्र से भी कही कि— "उपन्यास लिखने में मेरा अभिप्राय यह स्पष्ट करना है कि मनुष्य समाज परम्परा-गत विचारधाराओं का दास नहीं है, बल्कि वह अपनी विचारधारा का स्रष्टा है। समाज के जीवन में प्रायः घटनेवाली घटनाओं को उपन्यास के परीक्षण-पात्र में रखकर यह दिखाना चाहता हूँ कि किस प्रकार इन घटनाओं से हमारी विचारधारा में परिवर्तन आ जाता है या समाज में नये अनुभव कैसे नयी विचारधारा को जन्म दे देते हैं।" (**देखा, सोचा, समझा**, पृष्ठ 95)

स्पष्ट है, यशपाल अपने उपन्यासों की योजना बनाते समय विचारों की ख़ास तरह से विकासमान प्रक्रिया चुन लेते हैं। इस चुनाव की परीक्षा वे पात्रों में करते हैं। यशपाल विषय का चयन चाहे जहाँ से करते हों, पर लक्ष्य उनका यही रहता है कि शोषित-पीड़ित की शक्ति संगठित हो। उनके निम्न वर्गीय पात्र या कम्युनिस्ट पात्र इस शक्ति को संचित करते नज़र आते हैं। 'न्याय का संघर्ष' के अनेक निबन्धों में उन्होंने शक्ति के इस संचयन पर बार-बार लिखा है।

यशपाल का लेखन आरंभ से अन्त तक यथास्थिति के ख़िलाफ़ लड़ाई के औज़ार की तरह सामने आया है। समाज की तरह-तरह की विसंगतियों का लेखा-जोखा हमें उनके साहित्य में मिलता है। साम्राज्यवादी शक्तियों से जंग करते हुए उन्होंने अपनी भीतरी लड़ाई को स्थगित नहीं किया। उनकी भीतरी लड़ाई उस व्यवस्था से थी, जिसने मनुष्य में तरह-तरह की असमानता के संस्कार बोये हैं। असमानता के सवालों को प्रेमचन्द ने किसानों, ज़मींदारों, छूत-अछूतों, धर्म तथा संस्थाओं तथा मज़दूर और मालिकों के बीच से उठाया था, जबकि यशपाल ने क्रान्तिकारी संगठनों की कल्पना करते हुए इन सवालों से लोहा लेने का भी काम

किया है। उन्होंने स्त्रियों की मुक्ति पर विशेष ध्यान देकर उनके ऊपर लदी मर्यादाओं को दफ़ना दिया है। उनका लेखन पहले आलोचनात्मक यथार्थवादी की तरह शुरू होता है तथा बाद में धीरे-धीरे समाजवादी यथार्थवाद की सीमा में प्रवेश करता गया है। आलोचनात्मक यथार्थवादी के नाते यशपाल स्त्री-पुरुषों के यौन-सम्बन्धों की अस्वाभाविक विकृतियों की आलोचना करते हैं। उनकी नज़र में ये विकृतियाँ सामन्तवादी और पूंजीवादी वर्ग नैतिकता की देन हैं। इस आलोचना को यशपाल सक्रियता से पात्रों के व्यवहार में उतार लाते हैं। वे मर्यादावादियों को चिढ़ाते हैं। व्यंग्य और कटूक्तियों का सहारा लेकर ये पात्र अपने को सहज बनाते हैं तथा अन्य आरोपों की परवाह नहीं करते। ये काम में लगे रहते हैं। ये ऐसा नहीं करते कि यौन भोग करते हुये छिपते हों। वे उसे प्रेम में बदलते हैं। प्रेम एक रूपान्तरण की प्रक्रिया बन जाती है। प्रेम-भावना पूंजीवादी विकृत संस्कृति की तरह भोग से काफ़ी दूर है। सम्पन्न घरों की लड़कियाँ-लड़के अपना वर्ग बदलते हैं, वैचारिक दृष्टि से सर्वहारा के साथ जुड़ते हैं, लेकिन ख़ुद की ज़िन्दगी में कुंठित नहीं रहना चाहते। वे अपनी प्राकृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति से भागते नहीं। कुछ पात्र ऐसे भी आते हैं, जो पहले ही संकल्प ले लेते हैं—शादी न करने का। वे कम्युनिस्ट पार्टी में काम करने के लिये विवाह से दूर रहना चाहते हैं, लेकिन शीघ्र ही उनकी यह समझ में आ जाता है कि पार्टी में काम करने के लिये भी आदमी को स्वभाव में सहजता लानी चाहिये। किसी भी तरह की कुंठा इस मार्ग में बाधक होती है। यह प्रक्रिया यशपाल ने अपने क्रांतिवादी सोच के तहत पूरे होश में तय की और उसे अन्त तक पूरे आत्मविश्वास के साथ बनाये रखा है। उन्होंने क्रान्तिकारी स्वच्छन्दतावाद की मनोभूमि में अपने चरित्रों को रचा है। यदि यह न करते तो उनके पात्रों में भीतरी सड़ाँध मौजूद रहती और उसमें संत्रास, पीड़ा, घुटन, अकेलापन और ऊब के कीड़े बजबजाते रहते। संभवतः यशपाल उन आम लोगों को अपनी निगाह में रखते हैं, जो अपनी यौन-तृप्ति के लिये किसी तरह का दुराव नहीं बाँधते तथा सर्वहारा की शक्ति के रूप में बदल जाते हैं। मध्यवर्गीय जीवन में से इन विकृतियों को वे निकालना चाहते हैं—विरेचन की पद्धति से। यशपाल के ऐसे सभी पात्र रोमानी प्रवृत्तियों में से गुज़रते हैं और वही इनसे उनकी लड़ाई का मार्ग है।

प्रकृतवादी ढंग से मात्र जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति यहाँ नहीं होती। यशपाल रोमानियत और यथार्थ के बीच विरोध नहीं मानते। उन्हें अर्न्स्ट फ़िशर का यह कथन मालूम है कि—"रोमांटिसिज़्म और रियलिज़्म—रूमानियत और यथार्थवाद पूरी तरह से एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं। बल्कि रोमांटिसिज़्म आलोचनात्मक यथार्थवाद की आरम्भिक अवस्था है। इनमें दृष्टिकोण का अन्तर नहीं। हाँ, पद्धति का अन्तर ज़रूर आ जाता है। यथार्थवाद के सहयोग से रोमांटि-

सिज़्म की प्रवृत्ति अधिक वस्तुपरक, तटस्थ और दूरवर्ती हो गई है। (**द नैसिसिटी ऑफ़ आर्ट**, पृष्ठ 103)

मैक्सिम गोर्की ने भी लगभग इसी तरह की भावनाएँ व्यक्त की हैं। यशपाल ऐसे पात्रों का चयन या सृजन भी करते हैं, जिनमें समाजवादी वैयक्तिकता आ जाती है। ऐसे पात्र वैज्ञानिक सोच-समझ से भरे-पूरे होते हैं तथा उनमें अपनी मौलिकता पूरी शक्ति से मौजूद होती है। प्रगतिशील आन्दोलन के बाद यह मार्क्सवादी चिन्तन का प्रभाव है, कि वे इस तरह के पात्र रच पाये। उनकी कल्पना शक्ति इस काम में सहयोग देती है। समाजवादी यथार्थवाद को आत्मसात करने में मनोविश्लेपण शास्त्रियों की उपलब्धियों को अस्वीकारा नहीं जाता, वरन् वे व्यापक समाज में फैलकर अच्छे नतीजों से युक्त हो जाती हैं। इसके द्वारा मनुष्य का समूचा व्यक्तित्व निखर जाता है। वह सक्रिय नायक होता है। यशपाल चूंकि हिन्दी में ऐसे पहले लेखक हैं, जिन्होंने पुरानी चरित्र प्रणाली के बदले नये यथार्थ-वादी चरित्रों की योजनाबद्ध रचना की है, इसलिये उनके लिये चुनौतियाँ थीं। उनकी कल्पना शक्ति के लिये इस तरह की विरासत का आधार नहीं मिला। इसलिये कुछ विसंगतियाँ स्वाभाविक हैं। भाववादी रोमान तथा क्रान्तिकारी रोमान को बिलगाने में त्रुटियाँ रह गयी हैं। मध्यवर्गीय स्वभाव से मुक्ति भी सैकड़ों लेखकों की समवेत कोशिश होती है। इस कोशिश में, सतह में मौजूद सर्वहारा का शक्तिशाली संघर्ष भी सहायक होता है। यशपाल ने देखा कि यह संघर्ष इतना तेज नहीं हुआ है, इस कारण उन्हें अपनी सृजन क्षमता को ज़्यादातर अपने भरोसे विकसित करना पड़ा। उन्होंने इतिहास और अपने काल की सच्चाई को कल्पना के जरिये पात्रों में ढाला और पात्रों को काफ़ी आगे तक खींच ले गये, जो यथार्थ जगत् में कहीं-कहीं अभी विकसित नहीं हैं। यही कारण है कि लोगों ने उन्हें फॉर्मूलावाद भी कह दिया। गहराई से देखने पर फॉर्मूले के कुछ उदाहरण ज़रूर मिल जाते हैं, लेकिन ये बातें यशपाल की महानता को छोटा नहीं करतीं। वे निश्चय ही समकालीन यथार्थ के कुशल चितेरे हैं। आने वाले युग में वह हमारे गौरव माने जायेंगे।

यशपाल की रचनाएँ

कहानियाँ

(1)	पिंजरे की उड़ान	1939	विप्लव कार्यालय, लखनऊ
(2)	वो दुनियाँ	1941	,,
(3)	ज्ञानदान	1943	,,
(4)	अभिशप्त	1944	,,
(5)	तर्क का तूफ़ान	1946	,,
(6)	भस्मावृत चिनगारी	1946	,,
(7)	फूलो का कुर्ता	1949	,,
(8)	धर्मयुद्ध	1950	,,
(9)	उत्तराधिकारी	1951	,,
(10)	चित्र का शीर्षक	1951	,,
(11)	तुमने क्यों कहा था, मैं सुन्दर हूँ	1954	,,
(12)	उत्तमी की माँ	1955	,,
(13)	ओ भैरवी	1958	,,
(14)	सच बोलने की भूल	1962	,,
(15)	खच्चर और आदमी	1964	,,
(16)	भूख के तीन दिन	1968	,,
(17)	लैम्पशेड	1979	लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद

उपन्यास

(18)	दादा कामरेड	1941	विप्लव कार्यालय, लखनऊ
(19)	देश द्रोही	1943	,,
(20)	दिव्या	1945	,,
(21)	पार्टी कामरेड	1946	,,
(22)	मनुष्य के रूप	1949	,,
(23)	अमिता	1956	,,

(24) झूठा सच भाग-1	1958	विप्लव कार्यालय, लखनऊ
(25) झूठा सच भाग-2	1960	,,
(26) बारह घण्टे	1963	,,
(27) अप्सरा का शाप	1965	,,
(28) क्यों फँसे ?	1968	,,
(29) मेरी तेरी उसकी बात	1975	,,

नाटक

(30) नशे-नशे की बात	1952	,,

निबन्ध

(31) न्याय का संघर्ष	1940	,,
(32) बात-बात में बात	1950	,,
(33) जग का मुजरा		,,
(34) देखा, सोचा, समझा	1951	,,
(35) चक्कर क्लब (6ठा संस्करण)	1963	,,

यात्रावृत्तान्त एवं संस्मरण

(36) सिंहावलोकन भाग-1	1951	,,
(37) सिंहावलोकन भाग-2	1952	,,
(38) सिंहावलोकन भाग-3	1955	,,
(39) बीबी जी कहती हैं, मेरा चेहरा रोबीला है	1959	,,
(40) लोहे की दीवार के दोनों ओर (द्वितीय संस्करण)	1984	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
(41) राह बीती	1956	विप्लव कार्यालय,लखनऊ
(42) स्वर्गोद्यान : बिना साँप	1975	,,

सिद्धांत ग्रंथ

(43) मार्क्सवाद	1940 ई०	,,
(44) गाँधीवाद की शव परीक्षा	1941 ई०	,,
(45) राम-राज्य की कथा	1950 ई०	,,

अनूदित पुस्तकें

(46) पक्का कदम — 1949 ई०—विप्लव कार्यालय, लखनऊ
(47) चीनी कम्युनिस्ट पार्टी — प्रकाशन वर्ष एवं प्रकाशक अप्राप्त
(48) जनानी ड्योढ़ी — प्रकाशन वर्ष एवं प्रकाशक अप्राप्त
(49) चलनी में अमृत — प्रकाशन वर्ष एवं प्रकाशक अप्राप्त
(50) फसल — प्रकाशन वर्ष एवं प्रकाशक अप्राप्त
(51) जुलैखाँ — 1960 ई०—विप्लव कार्यालय, लखनऊ

यशपाल के कृतित्व पर विशिष्ट आलोचनात्मक ग्रंथ

(1) मार्क्सवाद और यशपाल—पारसनाथ मिश्र—
लोकभारती, प्रकाशन इलाहाबाद
(2) क्रांतिकारी यशपाल—(सं०) मधुरेश—लोक भारती, इलाहाबाद
(3) यशपाल के पत्र—(सं०) मधुरेश—मैकमिलन दिल्ली
(4) यशपाल और माणिक वंद्योपाध्याय—सदाशिव द्विवेदी
प्रासंगिक प्रकाशन, दिल्ली
(5) यशपाल : व्यक्तित्व और कृतित्व—सरोज गुप्त
(6) यशपाल और हिन्दी साहित्य—सुरेशचन्द्र तिवारी
(7) कलम का सिपाही—अमृतराय—हंस प्रकाशन, इलाहाबाद
(8) यशपाल का कथा साहित्य—प्रकाशचन्द्र मिश्र
(9) यशपाल अभिनन्दन ग्रंथ—(सं०) वा० प्रसाद

भारतीय साहित्य के निर्माता

भारतीय साहित्य के इतिहास निर्माण की दीर्घ यात्रा में जिन महान् प्राचीन अथवा अर्वाचीन प्रतिभाओं ने महत्त्वपूर्ण योग दिया है, उनका परिचय सामान्य पाठकों तक पहुँचाने के उद्देश्य से इस पुस्तकमाला का प्रकाशन आरम्भ किया गया है। अब तक हिन्दी में निम्नांकित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं :

लक्ष्मीनाथ बेज़बरुआ	हेम बरुआ
बंकिमचन्द्र चटर्जी	सुबोधचन्द्र सेनगुप्त
बुद्धदेव बसु	अलोकरंजन दासगुप्त
चण्डीदास	सुकुमार सेन
ईश्वरचन्द्र विद्यासागर	हिरण्मय बनर्जी
जीवनानन्द दास	चिदानन्द दासगुप्त
काज़ी नज़रुल इस्लाम	गोपाल हाल्दार
महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर	नारायण चौधुरी
माणिक बन्द्योपाध्याय	सरोजमोहन मित्र
माईकेल मधुसूदन दत्त	अमलेन्दु बोस
प्रमथ चौधुरी	अरुणकुमार मुखोपाध्याय
राजा राममोहन राय	सौम्येन्द्रनाथ टैगोर
ताराशंकर बन्द्योपाध्याय	महाश्वेता देवी
श्रीअरविन्द	मनोज दास
सरोजिनी नायडू	पद्मिनी सेनगुप्त
तरुदत्त	पद्मिनी सेनगुप्त
गोवर्धनराम	रमणलाल जोशी
मेघाणी	वसन्तराव जटाशंकर त्रिवेदी
नानालाल	उमेदभाई मणियार
नर्मदाशंकर	गुलाबदास ब्रोकर
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	मदन गोपाल
बिहारी	बच्चन सिंह
देवकीनन्दन खत्री	मधुरेश
घनानन्द	लल्लन राय
हरिऔध	मुकुन्ददेव शर्मा
जयशंकर प्रसाद	रमेशचन्द्र शाह
जायसी	परमानन्द श्रीवास्तव
कबीर	प्रभाकर माचवे
केशवदास	जगदीश गुप्त
महावीर प्रसाद द्विवेदी	नन्दकिशोर नवल
नन्ददुलारे वाजपेयी	प्रेमशंकर
प्रेमचन्द्र	प्रकाशचन्द्र गुप्त
राहुल सांकृत्यायन	प्रभाकर माचवे
रैदास	धर्मपाल मैनी
श्यामसुन्दरदास	सुधाकर पाण्डेय
सुभद्रा कुमारी चौहान	सुधा चौहान

वी० एम० श्रीकंठय्य	ए० एन० मूर्तिराव
वसवेश्वर	एच० थिप्पेरुद्रस्वामी
विद्यापति	रमानाथ झा
ए० आर० राजराज वर्मा	के० एम० जॉर्ज
चन्दु मेनन	टी० सी० शंकर मेनन
कुमारन् आशान	के० एम० जॉर्ज
महाकवि उल्लूर	सुकुमार अपि़कोड
वल्लत्तोल	वी० हृदयकुमारी
दत्तकवि	अनुराधा पोत्‌दार
ज्ञानदव	पुरुषोत्तम यशवन्त देशपाण्डे
हरिनारायण आपटे	रामचन्द्र भिकाजी जोशी
केशवसुत	प्रभाकर माचवे
नामदेव	माधव गोपाल देशमुख
नरसिंह चिंतामण केलकर	रामचन्द्र माधव गोले
श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर	मनोहर लक्ष्मण वराडपांडे
तुकाराम	भालचन्द्र नेमाड़े
फ़कीरमोहन सेनापति	मायाधर मानसिंह
राधानाथ राय	गोपीनाथ महन्ती
सरलादास	कृष्णचन्द्र पाणिग्राही
भाई वीर सिंह	हरवंस सिंह
दुरसा आढ़ा	रावत सारस्वत
जाम्भोजी	हीरालाल माहेश्वरी
मुँहता नैणसी	वृजमोहन जावलिया
प्रिथीराज राठौड़	रावत सारस्वत
सूर्यमल्ल मिश्रण	विष्णुदत्त शर्मा
वाणभट्ट	के० कृष्णमूर्ति
भवभूति	गो० के० भट
जयदेव	सुनीति कुमार चटर्जी
कल्हण	सोमनाथ धर
क्षेमेन्द्र	व्रजमोहन चतुर्वेदी
माघ कवि	चण्डिकाप्रसाद शुक्ल
सचल सरमस्त	कल्याण बू० आडवाणी
शाह लतीफ़	कल्याण बू० आडवाणी
भारती	प्रेमा नन्दकुमार
इलंगो अडिगल	मु० वरदराजन
कम्बन	एस० महाराजन
माणिक्कवाचकर	जी० वंमीकनाथन
पोतन्ना	दिवाकर्ल वेंकटावधानी
वेदम् वेंकटराय शास्त्री	वेदम वेंकटराय शास्त्री (कनिष्ठ)
गुरजाड	नार्ल वेंकटेश्वर राव
…लिगम्	नार्ल वेंकटेश्वर राव
…मना	नार्ल वेंकटेश्वर राव
…लिब	मुहम्मद मुजीब

INDIAN INSTITUTE
94872
13/3/20
SIMLA

दो तरह के लोग होते हैं। एक वे, जो मक्खी की तरह गुड़ खाते हैं, उसमें फँस जाते हैं और जान से हाथ धो बैठते हैं। दूसरे वे, जो मधुमक्खी की तरह तमाम वनस्पतियों का रस सोखकर शहद बना लेते हैं—वह शहद, जो लोगों को नीरोग बनाती है। जिन लोगों की हैसियत गुड़ खाने की नहीं है और न शहद बनाने की, वे अपने दुखड़े के बोझ से कुचल जाते हैं। आज के संसार में मधुमक्खी से यह गुर आदमी ने भी सीख लिया है। समूह की शक्ति का रहस्य वह जान गया है।

यशपाल हिन्दी के उन लेखकों में से रहे हैं, जिनका विश्वास आदमी की समूह शक्ति में था। मृत्यु के भय से वे ज़िन्दगी के हर क्षण नहीं मरे। वे तो जिजीविषा के बल पर मृत्यु में भी जिये। हमें उनकी निधन तिथि भले मालूम हो, पर उनका सृजन कालातीत है। उनकी रचनाओं से जो व्यक्तित्व बनता है, उसकी मृत्यु कभी नहीं हो सकती। उनके कारण साहस और संकल्प की अकूत चिनगारियाँ हमारे दिलों में चमकने लगती हैं। यशपाल का नाम चन्द्रशेखर आज़ाद, सरदार भगत सिंह, सुखदेव जैसे क्रान्तिकारियों के साथ जुड़ा है। वे हमारे देश की जनता की जवानी के प्रतीक बन गये हैं। अपने क्रान्तिकारी साथियों में से जब यशपाल अकेले बचे, तो वह बन्दूक़ से गोली दाग़ने का काम छोड़कर क़लम से शब्द दागने लगे। कर्म और औज़ार बदल गये, पर लक्ष्य नहीं बदला। अंग्रेज़ी हुकमत और साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ वह लगातार हथियार ताने रहे। देशी सामन्तवाद और उसके नीतिशास्त्र के भी यशपाल आजीवन शत्रु रहे। इन शत्रुओं के प्रलोभन के सामने वह कभी नहीं झुके।

प्रस्तुत विनिबन्ध में लेखक कमला प्रसाद ने यशपाल के संघर्षपूर्ण जीवन, समग्र लेखन और चिन्तन का बहुत व्यापक स्तर पर विश्लेषण एवं विवेचन किया है।

Library IIAS, Shimla
H 813.3 Y 26 K
00094872

रेखांकन : विभास दास